विषाद

(कहानी संग्रह)

लेखक

श्रीराम शर्मा

सरस्वती प्रेस, बनारस

प्रथम संस्करण, १९५४

मूल्य ३)

मुद्रक
सदन लाल गुप्ता, बी०एस-सी०
टेकनिकल प्रेस, इलाहाबाद

माँ को

जो घर में सब से बड़ी

हो कर भी सबसे

छोटी

है !

सूची

भूखा रोज़ेदार

उसके नाम के आगे न तो मौलवी, मौलाना, शेख या सैयद लगाया जाता था और न उसके नाम के पीछे खान, अली या साहब।

उसका नाम था 'मेहर'। हाँ, केवल मेहर, मेहर अली भी नही। फिर उसके इस छोटे-से नाम के लेने वाले कलकत्ता नगर मे अँगुलियो पर गिने जा सकते थे, और एक बार चारो अँगुलियो पर चक्कर मार लेने के बाद अँगूठे महाशय को दुबारा घूमने की तक़लीफ नही उठानी पड़ती थी। पॉच बरस का बालक हो या अस्सी साल का बूढा, सब इसी नाम से पुकारते थे। मेहर को अपने इस एकाकी और दिगम्बर नाम से न तो घृणा थी और न कोई खास दिलचस्पी!

मेहर कहाँ का रहने वाला था, उसका घर कहाँ है, किसी को मालूम नही; आज तक किसी को मालूम करने की ज़रूरत ही नही हुई। एक दिन वह घूमते-फिरते कही से कलकत्ते के लम्बे-चौड़े मछवा बाजार मे आ निकला और वही दस रुपए मासिक किराये पर एक छोटा-सा बरामदा लेकर रहने लगा। आज कल समाज मे जिन लोगो को बडा माना जाता है उनके बढ़प्पन के माप-दण्ड और सौ वर्ष पहिले के बढप्पन के माप मे ज़मीन-आसमान का अन्तर आ गया है। पुराने जमाने का बढप्पन अपनी सन्तान में लज्जा, नज़ाकत और मुहब्बत छोड़ कर दुनिया से बिदा हो गया। पूर्व परम्परा के ऐसे गुण मेहर मे भी दिखाई देते थे।

कलकत्ता आने के बाद कइयो की खुशामद के फल स्वरूप उसे एक जगह बच्चों को पढ़ाने का ट्यूशन मिला। कहने को ट्यूशन था, वैसे एक छोटी-पाठशाला थी। करीब एक दर्जन लड़के-लड़कियों को पढ़ाना पड़ता मेहर के पहुँचते ही सारे बच्चे उसे घेर लेते और प्रत्येक लड़का पहिले की और पढ़ कर राजा बनने की फ़िक्र में रहता। एक कहता पहिले पढ़ाओ और दूसरा कहता मुझे। मास्टर एक और विद्यार्थी बारह। लडके को पहिले नहीं पढ़ाया, वही रोता हुआ पहुँचा अम्माँ के पास।

बात यह थी कि उसने जो कुछ पढा था वह पढ़ाने के उद्देश्य से नही पढा था . पढते समय उसकी बड़ी-बडी आशाएँ थी । किन्तु जिस तरह "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषा वाराणसी गति"—जिसकी मुक्ति कही न हो उसकी मुक्ति काशीजी मे हो जाती है, उसी तरह जिसे कोई काम नही मिलता वह अध्यापक बनने का सौभाग्य प्राप्त करता है । बेचारा मेहर भी विवश होकर उसी पद पर आसीन हुआ ।

इस ट्यूशन के पीछे उसे बहुत परेशानी उठानी पड़ती थी । सुबह पॉच बजते ही उठना पडता, उठते ही हाथ-मुँह धोकर चलने की चिन्ता होती । उसका ट्यूशन था बालीगंज-नन्दन-वन मे । जल्दी-जल्दी डग मारने पर भी साढे छ:, पौने सात तक वहॉ पहुँचता । जिस दिन ऑखे दस-पन्द्रह मिनट देर से खुलती उसी दिन आफत आ जाती । विद्यार्थियो मे से तीन-चार लडके स्कूल को जाते थे । दस पन्द्रह मिनट की देरी से एक न एक पढने से रह जाता । अन्दर से कर्कश ध्वनि सुनाई देती 'हिन्दुस्तानी लोग टाईम के पाबन्द नही होते । इन्हें भला दस-पन्द्रह मिनट की कीमत क्या मालूम ।' कहना न होगा जिसका यह स्वर था वह योरप या अमेरिका का जीव न होकर हिन्दुस्तान का ही जन्तु था ।

प्राय: ऐसी ग़लती हो ही जाती थी । मेहर को इसके लिए बार-बार माफ़ी माँगनी पड़ती, प्रतिज्ञा करता कल से ऐसा न करूँगा । किन्तु जीभ के इतना आश्वासन देने पर भी आँखे, जब मौका लगता, प्रतिज्ञा भंग कर देती ।

कभी बच्चे पूछ लेते, मास्टर साहब, आपको आने में क्यों देर हो गई है ?

मास्टर साहब का एक ही उत्तर था 'क्या करूँ, पैदल आना पड़ता है । देर हो ही जाती है ।'

लड़के आश्चर्य से दूसरा प्रश्न करते 'मास्टर साहब, इतनी दूर पैदल किस तरह आते हो ? आप के पाँव नही दुखते ?'

मेहर रुँधे कण्ठ से उत्तर देता—जिस समाज में मै पैदा हुआ हूँ उसमे किसी सवारी पर सवार होना गुनाह है ।

बार-बार यही उत्तर सुन कर बच्चों के मन में मास्टर साहब के इस विचित्र समाज के बारे मे बहुत से सवाल पैदा होते, किन्तु मास्टर साहब ज्यादा बात-चीत नही कर सकते थे। कुछ अधिक वार्तालाप हुआ कि भीतर से नारी की चिर-परिचित ध्वनि सुनाई देती, 'मास्टर साहब, यह पढाई हो रही है या गप्पें उड़ रही हैं ? इस तरह बच्चे क्या खाक पढ़ेगे ?'

मेहर को यहाँ पूरे छः घण्टे देने पड़ते थे। एक तरह से वह लड़को की पढ़ाई पर निर्भर न रह कर घडी की सुइयों के आश्रित था। किसी दिन पाँच मिनट पहले चला जाता तो दूसरे दिन जवाब तलब किया जाता।

आये दिन अपमान की घूँट पीनी पड़ती थी। मास्टर साहब इसके अभ्यस्त हो गये। प्रति दिन अपने अध्यापक का अपमान देखकर विद्यार्थी गुरु का कितना आदर करते थे, यह बताने की आवश्यकता नही।

मेहर बच्चो को पढ़ाकर दो अढ़ाई तक घर पहुँचता, वहाँ चूल्हे से सर-पच्ची करनी पडती, तब पेट मे रोटी पड़ती। महीना खत्म होने पर वेतन मिलता। दस रुपए मकान कियारा देना पड़ता, पन्द्रह रुपए में महीने भर गुजारना पड़ता।

× × ×

जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने युद्ध के नाम पर अपरिवर्त्तनशील काल-चक्र को भी एक घण्टा पहले चलने के लिए बाध्य कर दिया तो मेहर की मुसीबतों का ठिकाना न रहा। इधर दिन पर दिन बढ़ती हुई महँगाई और अनाज की दुष्प्राप्यता से जीवन निर्वाह कठिन होता गया। समय पर न कोयला मिलता और न दूसरे पदार्थ, यदि अन्न लेने जाओ तो ट्यूशन से हाथ धोओ और काम पर गये तो चूल्हा जलना मुश्किल।

कपड़े का तो पूछना ही क्या ? मेहर के पास ले दे कर एक कमीज साबित बची थी। उसी को धो-सुखा कर पढ़ाने जाता। जिस दिन कमीज न धुलती लड़के कोरस में पुकारते 'मास्टर साहब गन्दे। हम आपके पास न बैठेंगे मेहर मन मसोस कर रह जाता।

नये समय के कारण अब नित्य देर होने लगी। इधर खाद्यान्न की दुष्प्राप्यता के कारण उसे अधिकतर रोजा रखने का सवाब मिलने लगा। ट्यूशनवाले चेतावनी दे-देकर हार गये और इस खोज मे थे कि कोई दूसरा मास्टर मिले तो जवाब दे दिया जाय। एक दिन मेहर को रुखसत मिल गई। जिस दिन इस नौकरी से छुट्टी मिली उस दिन उसे अपने पिता की मृत्यु से भी अधिक वेदना हुई। दु.ख इसलिए नही कि उस नौकरी से कोई सुख मिलता था और वह अब छिन गया था, बल्कि इसलिए कि अब ज़िन्दगी का आधार वह दुःख भी नही रह गया था।

बीस-पच्चीस दिन तक काम की तलाश मे वह इधर-उधर चक्कर काटता रहा, पर कोई काम नहीं मिला। मेहर ज्यादा पढ़ा-लिखा नही था, यह बात नही। उसने काफ़ी शिक्षा पाई थी। हजारो रुपए खर्च करने पर यूनिवर्सिटी से दो तीन कागज के टुकड़े मिले थे ; जिन्हे मेहर के पिता ने बड़े चाव से फ्रेम मे चढाया था। उसके पास वे फ्रेम अब भी थे ; लेकिन उनपर अब काफी धूल जम गई थी। वह जमाना गया जब इन कागज़ के टुकड़ो को दिखाने-भर से सौ-पचास की नौकरी बड़ी आसानी से मिल जाती थी। आजकल पन्द्रह-बीस की चपरासगिरी के लिए भी बहुत-सी चीजो की आवश्यकता होती है। मेहर उन फ्रेमों से लापरवाह रहा है और अब भी है। भूले-भटके भी उनपर नज़र न जाती थी। आज अकस्मात उनपर इसकी दृष्टि पड़ गई। दूसरे ही क्षण सारे फ्रेम निर्ममता से नीचे पटक दिये गये। कॉच दालान मे फैल गया। कागज़ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। कागज़ के उन फटे टुकड़ो को पाँव से रौद कर उसने सन्तोष की साँस ली।

आज महीना पूरा हो गया। मकान मालिक को कल किराया देना पड़ेगा। मकानदार से कह दिया जाय ठहर कर दूँगा? इससे वह क्या समझेगा? और कह ही देने से क्या वह मान जाएगा? बिना किराया दिये ही वह क्यों रहने देगा? यदि वह अपने किरायेदारो को दो-चार महीने के लिए भी बिना किराया दिये रहने देता तो मकानदार कैसे बनता? तब क्या यह जगह छोड़ देनी चाहिए? चिन्ता में रात बीत गई।

जिस दिन उसने घर छोड़ा, रमज़ान का महीना शुरू हुआ। मेहर के लिए तो शाबान भी रमज़ान था। दिन-भर वह इधर उ र भटकता रहा। जो थोड़ा बहुत सामान था वह उसी कोठरी मे छोड आया था। सन्ध्या समय एक जगह बैठ कर नमाज़ पढी और नल का पानी पी कर रोजा खोला। फुटपाथ पर जैसे-तैसे रात बिताई। सुबह तीन-चार बजे से ही कुछ मुसलमान युवक 'सहरी करो', 'होशियार हो जाओ', 'सहरी करो' चिल्लाते हुए गली-गली घूमने लगे। ऊँचे-ऊँचे घरो से टकरा कर इन शब्दों की प्रतिध्वनि लौट रही थी। मेहर होशियार था, किन्तु सहरी के लिए उसके पास कुछ भी न था। वह उठा। उसने निकट के नल से हाथ-पॉव धोये, खुदा का नाम लिया। पेट-भर पानी पिया। दिन निकला और इसी तरह बीत गया। मेहर ने फिर पानी से रोज़ा तोड़ा। धीरे-धीरे रात के अँधेरे ने शहर को ढ़ँक लिया। उसके पाँवो ने जवाब दे दिया। वह कही जाना चाहता था। किन्तु जा न सका। सडक पर इक्के-दुक्के आदमी चल रहे थे। मेहर फुटपाथ के पास बैठ गया। वहॉ दस-पन्द्रह भिखारी पहले से थे। कुछ लेटे हुए और कुछ बैठे हुए। कुछ भिखारी खिचडी खा रहे थे। जब खिचडी समाप्त हो गई तो वे पत्ते चाँटने लगे और उन्ही को चबा कर निगल गए।

मेहर जहाँ जा कर बैठा, एक अधेड आयु की स्त्री अपने बच्चों को खिचड़ी चटा रही थी। मेहर के बैठते ही चिल्लाई 'चल हट यहाँ से। 'क्या मेरे बच्चों को नज़र लगाएगा?' फिर इस स्त्री ने मुँह मोड़ लिया। बच्चो को अपने ऑचल की छाया में छिपा लिया। सम्भवत. 'इन्द्राणी' ने 'जयन्त' को अमृत चटाते समय भी असुर दृष्टि से इस तरह न बचाया होगा। एक साधारण भिखारिन से तिरस्कृत होकर मेहर कुछ बोला नही। चुप रहा।

चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, घना अंधेरा। जिस नगर में रात दिन से अधिक प्रकाशपूर्ण रहती थी, वही अब सन्ध्या से अंधकार का राज्य रहता है। चारो ओर सुनसान था। आकाश नीरव। किन्तु भिखारियों के इस घेरे मे नीद ने प्रवेश नही किया। एक ओर कोई बच्चा बडी देर से चिल्ला रहा था। मॉ अपनी सूखी छातियो को, चमड़े के टुकडो को, बार-बार बच्चे के मुँह में ठूँस रही थी और बच्चा उन्हे बाहर निकाल कर किलकारी भर

रहा था। अन्त में क्रोध से बालक ने छातियों को ज़ोर से चबाया। मा के मुँह से दबी चीख निकली। उसने बच्चे को ज़ोर-ज़ोर से मारना शुरू किया। मार के साथ बच्चे का रोना भी बढा। बच्चे की आवाज़ क्षीण हो गई। वह सिसकियाँ भरने लगा। अन्त मे चुप हो गया।

निकट ही नौ-दस बरस की बच्ची थी, पास ही उसकी माँ भी। बच्ची रह-रह कर चिल्ला रही थी। माँ रोने का कारण पूछ रही थी। बच्ची के मुँह से बोल नही निकल रहा था। माँ के झुँझलाने पर लडकी फूट-फूट कर रोने लगी। बोली—"मै हाथ मे खिचडी लिये आ रही थी। जैसे ही चौराहे पर पहुँची, तीन-चार कुत्ते मेरी तरफ दौड़े। मैं जैसे-जैसे भागी कुत्ते भी उसी तेज़ी के साथ दौड़े। मै एक जगह ठोकर खा कर गिर गई। एक कुत्ते ने आते ही खिचडी पर झपट्टा मारा और दूसरा मुझ पर झपटा। तीन-चार जगह पर उन्होने मुझ को काट खाया। कुछ लोगो ने मार-मार कर उन कुत्तो से बचाया। इन घावो में बहुत दर्द है माँ!" कहकर लडकी रोने लगी और साथ ही उसकी माँ भी।

जिन बच्चों को आज खाना नही मिला था वे रह-रह कर रोते थे और सिसकियाँ भर रहे थे। बीच-बीच मे चिल्ला उठते—"अम्माँ, बड़ी जोर से भूख लगी है, री! कुछ खिला दे।" और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगते। माताएँ भी बच्चों के साथ रोने लगतीं। कभी झिड़क कर और कभी पीट कर बच्चों का मुँह बन्द करना चाहती।

दूर की घड़ी से दो बजने की ध्वनि आई। यहाँ नीद किसे आती थी। सब के पेटो मे आग धधक रही थी। कुछ धीरे-धीरे कराह रहे थे। रह-रह कर करवटें ली जा रही थी। इसी समय आकाश से मूसलाधार पानी पड़ने लगा। लोग गिरते-पडते छाया की खोज मे चले। पाँच-छ. स्त्रियाँ उठ नही सकती थी। विवश, वही भीगती पड़ी रही। मेहर उठकर एक दूकान की छाया में पड गया। अभी दस-पाँच मिनट भी नहीं बीते थे कि वहाँ छाया की तरह लड़खड़ाती एक स्त्री आई और धड़ाम से गिर गई। मेहर उसके पास पहुँचा। उसने देखा—

एक छोटा-सा बालक उस स्त्री के स्तन को मुँह में दबाये चिपटा है। मेहर ने बड़ी कठिनाई से बच्चे के मुँह से स्तन छुड़ाया। बच्चे को हटाते ही वह स्त्री उठ बैठी और बोली —"अरे मेरे लाल को कौन छीनता है ?" और फिर धडाम से गिर गई। मेहर ने उस बच्चे के पेट पर हाथ रख कर देखा, पेट का चमडा चिपक गया था। बच्चा पन्द्रह दिन से अधिक का नही था ! किन्तु उसमें बाल-सुलभ कोमलता नाम को नही थी। वह पत्थर से भी कठोर था। मेहर ने बच्चे की नाक पर हाथ रखकर देखा, बच्चा संसार से बिदा ले चुका था।

स्त्री नीचे पड़ी भीग रही थी। पानी मूसलाधार बरस रहा था। मेहर ने उस स्त्री को उठा कर छाया मे सुलाया। 'स्वयं' भीगने लगा। दूकान में से निकलनेवाले क्षीण प्रकाश में उसने देखा वह स्त्री हड्डी का ढाँचा भर शेष रह गई है, लेकिन उसकी आँखे, नाक आदि अग सुन्दर थे। उसने सोचा स्त्री भिखारिन नही है। इसी समय स्त्री का शरीर काँपा। मेहर भीगता रहा, निश्चल पत्थर की तरह।

दिन निकला। नित्य की तरह लोग सड़क पर चलने-फिरने लगे। मेहर की नज़र रातवाली जगह पर गई। पानी से अकड़ी पांच-छः औरतों की लाशें पडी थी। थोडी देर में कुछ लोग आये और उन लाशों को ठेले में डाल कर चलते बने। उन लोगों के मुँह पर न घृणा थी और न विषाद, मानों इस कार्य मे बचपन से अभ्यस्त हों। जब वे लोग मेहर की पासवाली स्त्री को घसीटते हुए ठेले के पास ले गये तब मेहर की आँखों से बरबस दो बूँदें टपक पड़ी।

मेहर का शरीर गिरा पडता था। वह खड़ा नही हो पाता था। उसके रोम-रोम में चारों ओर बिच्छुओं के दशन की पीडा थी। उसका शरीर जल रहा था। दस-ग्यारह बजे तक वह पास के पेंड की छाया मे पड़ा रहा। एकाएक उसके मन में आया जामा मस्जिद पहुँचना चाहिए। वह बारह बजने के बाद रह न सका। चल पड़ा। पैर लडखड़ा रहे थे। पर वह आगे कदम बढ़ाता गया। बिजली के खम्भों का सहारा ले-लेकर, ठहर-

ठहर कर, हिम्मत बाँध कर कदम बढाता। क़दम-क़दम पर हाँफने लगता, फिर भी आगे ही कदम रखता। कई जगह बैठा, उठा, और चला। प्यास से मुँह सूख रहा था। जीभ पर काँटे पड़ गये। प्राण ओठो तक आ रहे थे। मस्तक चकरा रहा था। इसी समय उसकी नजर एक नल पर गई। नल खुला था। उसमें से धगधग करता पानी निकल रहा था। मेहर के पैर एकाएक नल को तरफ़ बढे। वह दूसरे क्षण नल के पास था। उसके हाथ आगे बढे। पानी भरी अंजली मुँह की ओर चली। एकाएक हाथ काँपा और अजली का पानी जमीन पर ढुलक गया। मेहर बडबडाया "नही, नही, यह नहीं हो सकता। मैं बीस बरस से रोज़ेदार हूँ। लगातार बीस बरस से। क्या मैं आज अपना व्रत तोड दूँगा? नहीं, यह नहीं हो सकता। एक घूट पानी के लिए? नहीं-नही, अमृत के लिए भी नहीं।" वह सडक की ओर घूम गया। उसका माथा घूम रहा था। आकाश चूमनेवाले सात-सात मंजिल के मकान घूम रहे थे। आकाश घूम रहा था। जमीन सरक रही थी। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। उसे पता नही था, वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है? वह चला जा रहा था।

जामा मसजिद के पास पहुँचते-पहुँचते पाँच बज गये। जो मुस्लिम होटलें दिनभर सुनसान पड़ी थी, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं, रोज़ेदार मुसलमान आ-आकर कुर्सियो पर जमने लगे। रेडियो बजने लगा। चहल-पहल हुई। छौक की सुगन्ध और मछली तलने की दुर्गन्ध आ रही थी। होटलों के बाहर बड़े-बड़े साईन बोर्डों पर लिखा था, रमज़ान के लिए स्पेशल 'फालूदा' और 'हरीस'। लेकिन यह स्पेशल चीजें उन्ही के लिए थी, जिनके पास रमज़ान के लिए स्पेशल पैसे भी हों। गिरता, हटता, सोता, उठता, बैठता आखिर मेहर जामा मसजिद पहुँचा। अब उसके पावों ने बिलकुल जवाब दे दिया था। बैठ-बैठ कर, लेट-लेट कर उसने मसजिद की सीढ़ियाँ पार की और ऊपर जा कर वह एक कोने में पड़ गया। धीरे-धीरे रोज़ेदार मुसलमानों का मसजिद में जमघट लगने लगा। आनेवालों में बच्चे थे, जवान थे और बूढे भी थे। सब अपने साथ तोशेदान

ला रहे थे । किसी के लिए 'ग्रॉंड होटल से खाना आ रहा था और किसी के लिए 'रायल' होटल से । लोगों ने आते ही अपने अपने दस्तरखान बिछाये और उन पर वे अपना-अपना खाना जमा कर बैठ गये । रोज़ेदारों की निगाह कभी घडी पर जाती है, कभी खाने पर । घडी की सुई के साथ-साथ उनका मन भी भोजन के लिए घूम रहा था । बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे, जवान गप-शप मार रहे थे और बूढ़े अपनी मालाएँ निकाल कर फेर रहे थे । मेहर एक कोने में पडा बडबडा रहा था । उसकी तरफ नजर डालने की किसे फुर्सत थी । एक तरफ़ फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपडे पहिने गरीब रोज़ेदार बैठे थे ।

इसी बीच कुछ लोग अपने नौकरों पर थाल रखाये वहाँ पहुँचे । फिर क्या था, चारो तरफ़ से रोज़ेदारो ने उनको घेर लिया । धक्कम्-धक्का होने लगा । प्रत्येक आदमी इस कोशिश में था कि भोजन पहले उसे मिले । मेहर की आँखे खुली । वह उठा । उसके पैर भी लडखड़ाते हुए उसी तरफ़ चल पडे । उसने भी आगे बढ़ कर हाथ पसारा । किन्तु उसका हाथ काँप गया । मुँह लज्जा से झुक गया । वह पीछे हटा ।

मेहर गिरता-पड़ता पानी के हौज की तरफ बढ़ा । हौज के किनारे पहुँच वह पानी के लिए ज्योही झुका उसके पॉव लरज गये । वह धड़ाम से हौज़ मे गिरा । आसपास के कुछ आदमी हौज़ पर पहुँचे । एक ने हौज में कूद कर मेहर को बाहर निकाला । दस-पन्द्रह मिनट के बाद मेहर के हाथों में कम्पन हुआ । धीरे-धीरे हाथ गाल के पास गये । उसने हाथ से पहले बॉया गाल छुआ और बाद में दाहिना । उसकी यह तोबा गुनाहों के लिए थी या हिन्दुस्तान जैसे बदनसीब देश में पैदा होने के लिए अनुमान नही लगाया जा सका । कुछ क्षण बाद वह छटपटाया और सदा के लिए शान्त हो गया । लोगो ने कहा—"अरे, कोई भूखा था बेचारा! मर गया । पुलिस को इत्तिला दे दो ।"

थोडी देर बाद उठाने वाले आये और उठा कर ले गये । लोग अपना भोजन करने लगे । कोई अपने साग की तारीफ कर रहा था और कोई पकोडियो की । मानो वहाँ कुछ हुआ ही नही !

हलाहल

मै कलकत्ता मेल से उतरा था, और "ग्राण्ड-ट्रंक" से मद्रास जाना चाहता था। ग्राण्ड-ट्रंक लेट थी, इसलिए नागपुर स्टेशन पर कुछ घंटे रुक जाना पडा। किसी स्टेशन का, विशेष कर बडे स्टेशन का, वातावरण मन को उदास बनाने के लिए पर्याप्त होता था। विविध आकृति के सैकडों-हजारों नर-नारियो का ताँता लगा रहता है। उधर से एक गाडी आई, हज़ारो की भीड़ लग गई। इधर से गाड़ी गई, मैदान साफ़ दिखाई देने लगा। एक दूसरे को देखते हैं, पास-पास बैठते है, किन्तु परस्पर कोई सम्बन्ध नही। बात करेंगे तब उड़ती-उडती। और बार-बार हमारा मस्तिष्क हमे वहाँ छोडकर न जाने कहाँ चक्कर काटता रहता है। दूर की यात्रा करने वालो के कान गाडी की गति और पहिये के सुर-ताल से ऐसे पक जाते है कि हम सुनकर भी कुछ नही सुनते। इस परायेपन को देख-देख कर मै उकता गया और उदासी दूर करने के लिए प्लेट-फार्म के चक्कर काटने लगा। प्लेटफार्म पर लोगो का कोलाहल वैसे कुछ कम नहीं होता, लेकिन हमारी विकलता उस समय अधिक बढ जाती है जब वाणी के इस महासागर में भी कबीर के शब्दो मे "पानी मे मीन पियासी..." की तरह हम एक शब्द भी नही समझ पाते। अकेले लम्बी यात्रा करते समय किसी से बात करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। उस समय यह अभाव विशेष रूप से खटकने लगता है। हम चाहते है, हमसे कोई बात करे। इस कोलाहल के बीच "गरम चाय" "पकौड़ी भजिए" "साग-पूरी गरमा गरम" की चीख वैसी ही लगती है जैसे कौओं की काँव-कॉव मे गिद्धों और चीलों" की आवाज़ शामिल हो गई है। मै प्लेटफार्म का एक से अधिक चक्कर न लगा सका। अपने बिस्तर-बन्द पर बैठ गया। एक ही दृश्य देखते-देखते मेरी आँखे और कर्कश कोलाहल को सुनते-सुनते कान थक गये। आँख बन्द कर मैं अपने आपको इस वातावरण से दूर करने की चेष्टा करने लगा। गाडी की प्रतीक्षा थी ही। सीटी की ध्वनि कान में पड़ते ही पटरियों पर दूर तक नज़र डाल लेता और जब देखता कि सिगनल भी नहीं गिरा तो मन ही मन रेल वालों को कोसता। आँख बन्द किये ऊँघने का प्रयत्न करता।

उसी समय लड़के-लड़कियो के एक झुण्ड ने मेरी आँखें खोली "बाबू जी बहुत भूख लगी है। कुछ खाने को दो मेरे दाता!"

इस वाक्य को एक साथ, जैसे कोरस मे-सब दुहरा रहे थे। किसी की आयु दस-ग्यारह वर्ष से अधिक नही थी।

सब का अजीब हाल था। बाल यो ही बढ़े हुए। लडकियो के बाल उलझे हुए और बालिश्त भर से बडे नही। भद्दे और बेढगे। लडको के बाल इधर-उधर बिखरे हुए, लापरवाही के कारण मटमैले पड़ गए थे। इन बालको को देखकर इतनी अरुचि हुई कि क्षण भर के लिए मैने अपनी आँखें बन्द कर ली। मुँह पर काफी मैल जमा था, ओठ फटे हुए, आँखे कीच भरी। और नाक नीचे की ओर ढँक-सी गई थी। हाथ-पाँवो पर मैल के कारण टेढ़ी-मेढी अनेक लकीरें पड गई थी। हाथ-पॉव सींक जैसे। कमर ने सत छोड दिया था। कपडे के नाम पर दो-तीन चिन्दियाँ, जिन्हे एक दो स्थानों पर यो ही कस लिया गया था। देखने पर ज्ञात हुआ, जैसे भगवान शंकर के गण—भूत-प्रेतो के बालक श्मसान से उठकर सीधे यही चले आये है।

घर से कुछ भोजन साथ लाया था। मैंने समूचा भोजन उन लोगो को दे दिया। भोजन पाते ही सब के सब उछलते-कूदते दूर चले गये। उनकी सारी दीनता, सारी गरीबी, सारी नम्रता एक बार ही न जाने कहाँ विलीन हो गई! एक दूसरे को छँटी-छँटी गालियाँ सुनाने लगा। उनके लिए वहाँ जैसे कोई न था। मै भी नही था, जिसने उन्हे उनकी दीनता और नम्रता के कारण दो क्षण पहले भोजन दिया था। एक लडके ने दूसरे को चपत जमाई और उस दूसरे बालक ने ऐसी टाँग मारी कि वह चित्त हो गया। वह लडका जमीन से उठा तो उसके चेहरे पर क्रोध नही था, वह खिलखिलाकर हँस रहा था। सारा भोजन उन्होने फटे कपड़े पर डाला और देखते-देखते सब कुछ चट हो गया। किसी ने निरी पूरी खाई तो किसी ने केवल साग पर ही हाथ साफ किया। किसी ने कम खाया, किसी ने ज्यादा, किन्तु किसी को कोई शिकायत न थी। एक सज्जन ने अध-जली सिगरेट पीकर फेंकी। समूह के एक लड़के ने उसे उठा लिया और फिर सब बारी-बारी से घूँट भर-भर कर हवा मे छल्ले बनाने लगे! एक स्त्री

ने खाने के बाद दो-तीन पूरियाँ और साग से सना हुआ टुप्पा फेंका तो सब के सब झपटे। हाथा-पाई हुई। एक लडके ने टुप्पा उठा लिया और पूरी का कुछ हिस्सा दाँत से तोड कर दूसरे लडके को दे दिया। सब के हिस्से में एक-एक ग्रास आया! मैंने उस दृश्य से अपनी आँखे हटा ली. किन्तु वह दृश्य आगे से न हटा। लडको का वही झुण्ड, उनका वह उच्छिष्ट भक्षण, उनकी निर्घृणता सब एक-एक करके मेरे मन को उद्विग्न करने लगी। इन लडकों के मुँह पर दुनिया-भर की दीनता और नम्रता दिखाई देती है और दूसरे क्षण ही लगता है इन बालको मे कूट-कूट कर उद्दण्डता भरी हुई है। कोई चिन्ता नहीं, तृप्त और लापरवाह! मैंने आँख उठाकर देखा, उम झुण्ड ने एक भोले भाले आदमी को घेर लिया है, और उसके कुछ न देने पर वे उसकी खिल्ली उडा रहे है। बेचाराबचने के लिए जहाँ जाता है, यह झुण्ड भी वहाँ पहुँच जाता है। वह जितना घबराता है, उतना ही इन बालको की हिम्मत बढती है।

मेरे आगे वैसे ही दो लड़के और आ खड़े हुए। दोनो एक ही आयु के। वेश-भूषा, हाव-भाव और आकृति इतनी मिली-जुली कि दोनों को अलग करके पहचानना कठिन था। एक फटी-सी लंगोटी लगाये, गले में तार-तार बना हुआ कपडे का टुकड़ा लपेटे, इन्होने भी अपनी अभ्यस्त विनय से माँगा, लेकिन इस बार इन्हे कुछ देने की इच्छा नही हुई। लड़को ने अपनी विनय को कई गुना बढाकर माँगना शुरू किया। मुझे कुछ जिज्ञासा थी, अतः मैंने कुछ देकर दाता और भिक्षुक में अन्तर उत्पन्न नही करना चाहा। मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए मैंने मित्रता के भाव से उनसे पूछा :—

"तुम दोनो मद्रास चलोगे?"

"क्या मद्रास का स्टेशन भी नागपुर इतना ही बड़ा है?"

"इस से भी बडा! लेकिन तुम्हें स्टेशन से क्या लेना है?"

"हमें स्टेशन ही पर तो रहना है। स्टेशन जितना आराम कहीं है? यहाँ कितनी तरह की चीजें खाने को मिलती है। मारवाड़ी, गुजराती, बंगाली, महाराष्ट्रीय, न जाने कहाँ-कहाँ के लोग आते है। उन सब के साथ अपने यहाँ

का भोजन होता है। एक से एक बढिया। हम लोगो ने यहाँ जितनो तरह की मिठाइयाँ और साग खाये है, आप उतने नाम भी नही जानते होगे।"

"नाम तो तुम भी नही जानते होगे।" मैंने उन्हे हँसाने के लिए यों ही प्रश्न किया।

"क्यो नही जानते। हमे सब मालूम है। अगर किसी चीज का नाम नही मालूम तो हम उसका नाम रख लेते है। हम लोग जितनी जल्दी नाम रख सकते है आप लोग नही रख सकते! यहाँ रात-दिन गाडियाँ आती रहती है, कुछ न कुछ खाने को मिल जाता है। कभी कुछ पैसे भी हाथ आ जाते है। कोई खुशी से देता है, किसी से छीन लेते है। कोई खाने बैठे तो उसे गिद्धो की तरह घेर लेते है और फिर ऐसा तंग करते है कि वह एक ग्रास भी नही खा सकता! कुछ भी न मिले तो केवल पत्ते चाटते-चाटते पेट भर जाता है। मेला लगा रहता है। आप ही कहिये आपका मन स्टेशन छोड़ने को करेगा?

मैंने बात बढाने के लिए ऊपरी दिल से कहा—"हाँ, है तो बड़ा आनन्द।"

"सच कहता हूँ बाबूजी! ऐसा सुख कही सपने मे भी नही मिलेगा। ये पुलिस वाले डण्डे मार-मार कर हमे बाहर निकालते है। कल इस मिट्ठू पर कितनी मार पड़ी! इसके मुँह से खून बहने लगा, लेकिन यह बदमाश आज फिर आ गया।"

"अपनी तो कहो। उस दिन दारोग़ा जी ने एक डडा ही टिकाया था कि सारी हिम्मत काफूर हो गई थी। और लगे थे पाँव पड़ने, हाथ जोड़ने! कहने लगा, माई-बाप अबकी माफ़ कर दो, फिर यहाँ पॉव नही धरूँगा। मुझ पर चोर की तरह मार पड़ी, लेकिन मैंने उसके आगे हाथ तो नही जोड़े! मर्द मार खाकर रोते नही, मार खा-खा कर हिम्मत बढ़ती है।"

"निकालूँ तेरा मर्दपना?"

उन दोनो मे हाथा-पाई शुरू हुई। अच्छा मनोरंजन हो रहा था, किन्तु मुझे उनके बारे मे अधिक जानना था, अत मैंने कहा—

"मिट्ठू, तुम बडे अच्छे लड़के हो। यह बताओ, तुम्हारे इस दोस्त के घर में कोई सगा-सम्बन्धी नही है?"

"है क्यो नही ? इस साले की बूढी माँ है। बेचारी दिन-भर मेहनत मजदूरी करके गुज़र करती है। इसे अच्छा खाना देती है, पहिनने के लिए कपड़े देती है। कभी चला जाता है। एक दो दिन रहता है। फिर बुढ़िया से कहता है—कुछ पैसे दो। बुढिया कहती है कि बेटा तुम अच्छा भोजन करो, अच्छा पहनो, लेकिन पैसो का नाम न लो! यह बुढिया पर हाथ उठाता है, बाबूजी! बेचारी की जोड़ी हुई पूँजी छीन लाता है। बदमाश को अभी से जुए की लत पड गई है। दूसरे दिन सब खोकर फिर अपनी जगह पहुँच जाता है।"

"बस, ज्यादा बात न बना। तुम्हारी सारी कलई खोल दूँगा! बाबूजी, इसका भाई देवता है देवता! जहाँ पाता है, पकड कर घर ले जाता है। लाड से समझाता है, प्यार से समझाता है। धमकाता है। इसकी मिन्नतें करता है, लेकिन यह है कि कभी उसका नाम तक नही लेता। एक दिन मैं इसकी गली से निकला, हमारे पडोस में तो रहता ही है, इसकी भाभी दरवाजे पर कुछ काम कर रही थी। मुझे देखकर बेचारी की आँखे डबडबा आई। उसने रोते-रोते पूछा—"तूने हमारा मिट्ठू देखा है? आठ-दस दिन से उसका पता नही। जाने कहाँ चला गया? ऐसी भाभी को पाऊँ तो घर से बाहर पाँव न रखूँ। मुझे कसम रखा लीजिये!"

इसी समय मिट्ठू की कमर पर पट्-पट् करके दारोग़ा जी के दो डण्डे पड़ गये। दारोग़ा तीसरा वार करे कि दोनों लड़के नौ दो ग्यारह हो गये। दारोग़ा हर साँस मे एक दर्जन गालियाँ देता रह गया। दूर जाकर दोनों लड़के हाथ हिला-हिला और मुँह बना-बना कर दारोगा को चिढाने लगे। बेचारा दारोग़ा झुँझला कर रह गया। यदि वे लोग मुझसे बातों में न लगे होते तो शायद दारोग़ा उन्हे कोई दण्ड नही दे सकता था।

गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी और मैं एक डिब्बे मे सवार हो गया। गाड़ी सीटी दे चुकी थी, इतने मे एक बारह-तेरह वर्ष की लड़की मेरे डिब्बे के पास आकर रुकी और इस तरह पथराई-सी आँखो से देखने लगी जैसे कुछ देखा नही

रही हो। उसने मुझ पर एक दृष्टि डाली और फिर सिर झुका कर खड़ी हो गई। उसने कुछ कहा नही।

"तुम्हे कुछ चाहिए ?"

उसने बिना सिर उठाये अपना दाहिना हाथ मेरे आगे कर दिया। उसका हाथ कॉप रहा था। मैंने उसके हाथ पर अठन्नी रख दी। धन्यवाद दिये बिना ही वह धीरे-धीरे लौट गई। एक साथ इतनी आसानी से इतने पैसे मिलने की प्रसन्नता उसकी आकृति पर दिखाई न दी।

गाडी चल दी। स्टेशन आये और गये। न मैं किसी की भाषा समझता था और न मेरे खाने योग्य चीज स्टेशनों पर मिलती थी। भूखा-प्यासा मद्रास पहुँचा। मार्ग मे ऑखों के आगे वही लड़के और लडकियाँ घूम रही थीं। हिन्दुस्तानी नगर का कोई चौराहा इस प्रकार के बालकों से शून्य नहीं मिलेगा, किन्तु इस बार मैंने प्रत्येक बड़े स्टेशन पर ऐसे लडके-लडकियों को कम संख्या मे नही देखा, जो इस प्रकार की आवारागर्दी में अपनी प्रतिभा, अपनी शक्ति नष्ट कर रहे थे। देश के उपवन की असंख्य कलिकाएँ खिलने से पहले ही मुरझा जाती हैं।

अपना काम करके दो-तीन दिन में ही मैं लौट रहा था। वही लडकों का झुण्ड। सारे लड़के हट जाते और आ खड़ी होती वह अबोध निश्चल बालिका, जिसकी आकृति पर कोई कृत्रिमता, किसी प्रकार की चंचलता न थी, जिसकी कुलीनता ने उसके नेत्रो को निगाह उठा कर देखने से रोक दिया था। गौरव और प्रतिष्ठा ने जिसे मूक बना दिया था और वृत्ति की तुच्छ अनुभूति से जिसके पॉव बोझल बन गये थे। नागपुर आया। द्वितीय श्रेणी के वेटिंग रूम मे अपना सामान रखकर मेरी आँखें इस लड़की को खोजने लगी। जल्दी ही वह लड़की दिखाई दी, एक कोने में बैठी कुछ खा रही थी। मैं उसके निकट गया। उसे पॉच रुपए का नोट देकर लौट रहा था, मैंने देखा उसकी ऑखें कृतज्ञता से भर आई है।

स्नान आदि से निवृत्त हो मैं अपनी गाड़ी की राह देखने लगा। चार-पॉच दिन तक साहबी पोशाक मे जकड़-बन्द रह कर तंग आ गया था। मैंने सूट

तहा कर रख दिया और धोती तथा नेहरू कुर्ता पहन लिया था। कुछ लड़को ने आकर माँगना शुरू किया। किन्तु इस बार उन्हे कुछ देने की इच्छा नही हुई और न मै उन लोगो से बात करना चाहता था। छ.-सात मिनट बाद मैंने देखा वही लडकी दूसरे प्लेटफार्म पर खडो मुझे घूर-घूर कर इकटक देख रही है। अपने पहले आचरण के विपरीत वह तेजी से कदम बढाती हुई मेरे पास आई और मेरी आँखो मे अपनी आँखे गडाती हुई बोली—

"आप हिन्दू है! आपने मुझे पहले क्या नही बताया? यह अपना नोट अपने पास रखिए! मुझे इसकी आवश्यकता नही।"

नोट मेरी ओर फेक कर वह तो तेज़ी से उलटे पाँवो लौट गई। उसके नेत्रो मे कितनी घृणा थी! द्वेष और घृणा की आग आँख के पर्दो के पीछे धधक रही थी। मै कुछ क्षणो के लिए सन्न-सा रह गया। मेरी इस अवस्था को देखकर लड़को की टोली में से एक ने कहा—"बाबूजी, उसकी बात पर मत जाइए। ससुरी मुसलमान है। पन्द्रह-बीस दिन से यहाँ है। नागपुर की नही है। किसी से सीधे मुँह बात करना तो जानती ही नही। हम लोगो से हमेशा कतराती है, जैसे छाया बचा कर चलना चाहती है।"

"क्यों रे रहमान?" लड़के ने अपने दूसरे साथी की ओर मुँह करके प्रश्न किया—तुझ से वह क्या कहती थी उस दिन? यही कहती थी न, तू मुसलमान होकर हिन्दू लडको के साथ क्यों रहता है? फिर मेरी ओर घूम कर उसने आवेश से कहा, "लेकिन बाबूजी रहमान ने भी उसे ऐसा जवाब दिया कि उसका बोल बन्द हो गया। इसने कहा भिखमगों में जात-पाँत काहे की? क्या हिन्दू, क्या मुसलमान? हम भिखमगो की भी कोई जात होती है? सब भिखमंगे है। उस दिन से ससुरी रहमान से भी बात नही करती। इससे उसने एक दिन कहा था, उसका बाप बम्बई में रहता था। अच्छा खाता-पीता था। माँ थी, भाई-बहन थे। अभी जो हिन्दू मुस्लिम दंगा हुआ न, उसमें हिन्दुओं ने इसके घर को चारों तरफ से घेर लिया था। जो कुछ था लूट लिया और घर मे आग लगा दी। माँ-बाप, भाई-बहिन सबकी बोटी-बोटी कर दी गई। इसने अपनी आँखों सब कुछ देखा। किसी तरह यह बच गई। इस

पर किसी ने हाथ नही उठाया। यह अपने किसी सगे-सम्बन्धी के पास नही गई। भटकती-भटकती यहाँ चली आई है। राम जाने सच कहती है या सब बातें मन-गढ़न्त है। लेकिन मॉग कर खाती है और रहती ऐसी है जैसे कोई नवाबज़ादी हो। हिन्दुओं को देख-देख कर कुढ़ती है। किसी अच्छे मालदार हिन्दू परिवार को देखकर मारे क्रोध के इसकी ऑखें जलने लगती है। उनके पास नही जाती। मुसलमान आता है तो उसके आगे, बिना कुछ कहे हाथ आगे बढ़ा देती है। कोई लाख कोशिश करे, मुँह से बात नही निकालती। बनना खूब आता है। हिन्दू कुछ देता है तो फेंक देती है। न जाने आप लोग भी इसे ही क्यो देना चाहते है! देखिए आप ही ने हमे फूटी कौड़ी न दी, इसे पाँच का नोट दे दिया!'

गाड़ी चल चुकी थी। मुझे ध्यान आया मेरे सूट मे रहने से वह मुझे मुसल-मान समझती रही और दोनों बार उसने मेरे पैसे ले लिये। लेकिन जब उसने मुझे हिन्दू वेश मे देखा तो उसे बेहद पश्चाताप हुआ। इससे अधिक मै न सोच सका! मन मे मै अपने आपसे प्रश्न पूछ रहा था—क्या यह हलाहल विष देश के नागरिको के अन्तस्तल में इतना गहरा पैठ चुका है?

—×—

प्रतिक्रिया

रहीम उस समय चौदह-पन्द्रह का रहा होगा।

आज दीवाली है। अमावस्या की अंधेरी रात में आकाश अस्पष्ट दिखायी देता है। अंधियारे में तारे अधिक साफ और आकर्षक लगते हैं। अमावस्या की तमपूर्ण रात्रि को पार्श्व भूमि में रखकर मर्त्य लोक के मानव ने दीपावली का आयोजन किया। गली, सड़क और चौराहे दीप-मालाओं से जगमगा रहे थे। गृहस्थों के घर, व्यापारियो की दूकानें, ग्वालो की गौशालाएँ, सर्वत्र दीप सजाये गये। दूकानों मे झाड-फानूस, कॉच-पात्र और कागज की तूमडियो से आनेवाला मोमबत्ती का शीतल, कोमल प्रकाश विविध रंगों में ढल रहा था कि सड़क पर चलनेवाला राहगीर उस आलोक मे अपने को क्षण मे पीला, क्षण मे लाल और क्षण मे हरा या गुलाबी रंग मे रँगा पाता। क्षण-क्षण में रँगों का परिवर्तन हृदय मे उल्लास और आनन्द उडेल रहा था।

रहीम ने अपने बाप से आग्रह किया, हम भी दीवाली देखने जायेंगे अब्बा, और अब्बा ने नौकर को आदेश दिया, इसे जरा रोशनी तो दिखा लाओ। भीड में बिछड़ न जाना। हाथ पकड़े रहना। और देखो दूर जाने की जरूरत नही जल्दी ही लौट आना।

रहीम की माँ ने नौकर को आगाह किया, होली दिवाली की रात है, इस दिन टोने-टिमके बहुत चलते है। बचाकर ले जाना।

और चलते समय माँ ने चुपके से नौकर के हाथ मे रुपया देकर कहा, मुन्नू की पसन्द की मिठाई या दूसरी चीज खरीद लेना।

रहीम ने घर से बाहर, पड़ोसी के चबूतरे पर कतार मे अगणित दीपक जलते देखे। दूर से लगा, यह उजाला अलग-अलग दीपकों से न बिखर कर सब दीपकों से एक साथ, अखंड रूप में निकल रहा है। दुमजिले, तिमंजिले पर एक कतार मे जलनेवाले मिट्टी के दीप और बिजली के गोलों का प्रकाश स्थिरता में भी चंचल था और उसकी झमझमाहट के साथ यह चंचलता ज्यादा सुहावनी थी। बालक इस दृश्य को देखता रह गया।

छोटे बड़े बालक दीपको को घेरे फुलझड़ियाँ और पटाखे चला रहे थे। कही अनारदाना भुरभुरा रहा था, कही बिच्छू की करामात थी और कहीं बिजली के तार का आँखों को चकाचौध करने वाला प्रकाश। पटाखो का आलोक या ध्वनि क्षण में विलीन हो जाती किन्तु बालकों का मुक्त हास्य देर तक न रुकता। बड़ो के लिए बच्चे फुलझड़ी थे और बच्चों के लिए बारूद की फुल-झडियाँ थी।

चारों ओर दीवाली का प्रकाश है। प्रकाश ही प्रकाश है और इस प्रकाश के सागर में अपनी डरावनी काली छाया लिये खडा है केवल उसका अपना घर। उसकी घर की बैठक में एक गोला टिमटिमा रहा है। जैसे मुहल्ले भर की मनहूसियत और कालिख सिमट कर उसके घर पर जमा हो गयो है। उसका घर जिन्न या शैतान की तरह हमेशा एक ही शक्ल-सूरत, रूखे-सूखे बाल, भयानक दाँत और ऊपर गहरी कालिख की चादर ओढ़े है। रहीम का जी हुआ मैं इस अँधेरे घर मे जितनी देर तक न आऊँ, अच्छा। प्रकाश मे जितनी देर रह सकूँ, अच्छा।

रहीम को पिछली दीवाली की याद साल भर बनी रही। उसे यह त्यौहार खूब पसंद आया था, इसी लिए वह इसकी राह देखता रहा। आस-पास के घरों मे खड़िया-चूना होता देख उसने माँ से कई बार जानना चाहा, माँ हम लोग दीवाली क्यो नही मनाते ? मुझे दीवाली बहुत अच्छी लगती है।

न तो माँ उसे समझा सकती थी कि दीवाली हमारे घर में क्यो नहीं मनायी जाती और न वह लड़का समझाने पर समझ सकता था। माँ ने बहाना बनाकर टाला—बेटा, पहले हमारे यहाँ दीवाली मनती थी, एक दिन पीर साहब तेरे अब्बा को सपने मे बोले कि तुम लोग दीवाली मनाओगे तो अच्छा नही होगा।

पीरों की बहुत-सी कहानियाँ उसने सुनी थी। बालक के दिल में पीर की जो तस्वीर थी वह एक दयालु और रहमदिल प्राणी की थी। बच्चे का भोला-पन सोचने लगा, पीर साहब दीवाली से नफरत क्यों करेंगे ? फिर सपने में मै क्या-क्या देखता हूँ ? परसो अब्बा जान कह रहे थे, सपना झूठा होता है, इसलिए उससे डरना नही चाहिए।

रहीम ने अपने अब्बा से पूछा। माँ ने उत्तर के लिए जिस बनावटी किस्से का सहारा लिया था, उसके बारे में अब्बा को पता न था। उन्होंने साफ-साफ कहा, मुसलमान हिन्दुओ के त्यौहार नही मनाते बेटा।

छोटी उम्र का लडका इस तर्क को पूरी तरह नही पचा सका। उसे मालूम था वह मुसलमान है और पड़ोस मे हिन्दू रहते है। वह हिन्दू लड़कों के साथ बराबर रोज खेलता था, और उसे मालूम था कि उन सब मे कोई फरक नहीं है। फिर उसकी समझ में न आया कि मुसलमान दीवाली क्यों नही मनाते ? मनाने मे क्या नुकसान होता ? अगर मनाते तो हमारे घर भी इतने अच्छे लगते। अगर अम्मीजान चाहे तो हमारा घर लीपा-पोता न जाता ? क्या उसे नये कपडे नही पहनाये जा सकते ? वह दूसरे लड़कों की तरह पटाखे नही चला सकता ? इसी उलझन मे उसने अब्बा से दूसरा सवाल किया।

'मुसलमान होने से ही दीवाली क्यो नही मनाई जा सकती अब्बा ? मुहल्ले भर मे हमारा घर ही कितना बदसूरत नजर आता है।'

'तुमसे कहा तो कि मुसलमान दीवाली नही मनाते फिर मगज क्यों खाये जाते हो ?'

अब्बा काम में व्यस्त थे। दूसरे आसपास की खुशहाली मे उनके मन को उदासी अज्ञात रूप से ढाँके ले रही थी। लड़के के प्रश्न से उदासी या बेचैनी उभर गयी। उनके उत्तर मे झुँझलाहट थी।

उनसे दुबारा प्रश्न नही हुआ। लड़के के मन में जरूर यह सवाल चक्कर लगा रहा था, मुसलमान होने से ही हम दीवाली क्यों नही मनाते। पटाखे चलाने का लोभ उसे ललचा रहा था।

सड़क की चहल-पहल और दियों के उजाले में अपने को पाकर वह इस सवाल को भूल गया। उसे यह याद न रहा कि वह मुसलमान है। दूसरे लड़कों को उछलता-कूदता देखकर वह भी छलांगे भरने लगा। मारे खुशी के किलकारी भरने लगा। नौकर के आदेश रह-रहकर कान में आ रहे थे, बाबू, धीरे चलो। जल्दबाजी न करो। उधर क्या देख रहे हो ? सीधे क्यों नहीं चलते ? और वह लापरवाही से आदेशों की अनजाने उपेक्षा कर रहा था।

मोड से उसने अपने घरपर एक नजर डाली, उस तरफ एक क्षण से ज्यादा न देखा जा सका।

अब वह बड़ी सड़क पर चल रहा था। एक दूकान पर मिठाई के छोटे-बड़े थाल सजाकर रखे गये थे। बिजली के तेज प्रकाश मे मिठाई पर चिपके हुए सोने-चाँदी के वरको की दमक आँखो को चकाचौध कर रही थी। थाल पर बरफी का ताजमहल था और पेठे से दिल्ली का बिड़ला मदिर बना था। मिठाई का घंटाघर और मिठाई का ही हाईकोर्ट। मिठाई के खरीदारों की भीड लगी थी। हलवाई तौलने मे मगन था। रहीम की आँखें मिठाई के थाल पर जा रुकी। आँखो के साथ पैर भी ठिठके। रहीम दूकान के सामने खडा था नौकर ने पूछा—कौन सी मिठाई लोगे? हलवाई का ध्यान इस ओर न था।

इतनी मिठाइयों मे से किसी एक को कैसे चुना जाय? जिस पर निगाह पड़ती उसे पाने के लिए जी ललचाता। किसे छोडे, किसे ले? मिठाई के जायके के बजाय सोने-चाँदी के वरकों का लालच ज्यादा था। रहीम ने कुछ देर सोच-कर के जैसे बिना निश्चय के गुलाब जामुन की तरफ इशारा किया। हलवाई दूसरे ग्राहक को निपटाकर गुलाब जामुन तोल रहा था कि रहीम की निगाह बंगाली मिठाई चमचम पर पडी। चमचम पर चपकी चाँदी की पन्नियाँ उसे ज्यादा भायीं। उसने थाली पर हाथ रखकर कहा, नही वह नहीं। हम तो यह लेंगे।

थाली पर हाथ लगाना था कि हलवाई के हाथ से तराजू छूट गयी। वह चौंककर उछला। नीचे आ, उसने रहीम के कान ऐंठे और बोला, यह तूने क्या कर डाला? सारी थाली खराब हो गयी? पास खड़े ग्राहक ने उससे भी अधिक कठोर स्वर मे कहा, आजकल मुसलमानो के दिमाग सातवे आसमान पर हैं। छोटे-छोटे लड़कों का भी सिर फिर गया है। हिन्दू की दूकान पर इस तरह बेधड़क मिठाई छू दी। नौकर बीच में पड़ा, उसने हलवाई से कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? आपकी थाली खराब हुई, मिठाई बाँध दीजिए, इतनी छोटी बात पर इतना तैश। इस बच्चे के बाप से आपकी इतनी महोब्बत है,

एक मुहल्ले के रहनेवाले। बच्चे से गलती हुई। मिठाई बाँधकर रखिए, लौटते हुए ले लूँगा।

उत्तर उचित था, लेकिन हलवाई की बड़बडाहट बन्द नही हुई। रहीम चुप था। कान ऐंठने से वह थरथर कॉप रहा था। मन मे विचार आया, सभी लोग हाथ लगा-लगाकर मिठाई की माँग कर रहे है, यह दो, वह दो। फिर मैंने हाथ लगा दिया तो कौन बड़ा गुनाह हो गया। मेरे हाथो में जहर नही है। हम इसकी पूरी थाली क्यों खरीदे ? उसे मेरे कान ऐंठने का क्या हक था ? उसे याद आया वह मुसलमान है।

मुसलमानो के छोटे-छोटे लड़के भी.. इसमे शरारत की क्या बात है ? सचमुच मुसलमान और हिन्दुओं मे कही बड़ा फरक है। इसलिए तो मुसलमान हिन्दुओं का त्यौहार नही मनाते, और हिन्दू उनकी छुई मिठाई नही खाते। यह फरक क्या और क्यों है ? हम लोग दीवाली नही मनाते, लेकिन मनाने-वालों से नफरत नही करते। हिन्दुओं को हमारे हाथ से इतनी नफरत !

"अब हम आगे देखने नही चलेंगे, चलो, वापस चलो।"—रहीम ने नौकर से कहा।

घर में पहुँचने पर नौकर ने मालकिन को चमचम की टोकरी दो। सारी कहानी सुनायी। मालकिन ने कहा, अच्छा, बच्चे खा लेगे। पैसे दे आओ। लेकिन एकमुश्त बाईस रुपया बटवे से निकालते हुए रहीम के अब्बा शांत न रह सके। उन्होंने रहीम के दाहिने-बाएँ गालो को अपने थपेड़ों से लाल कर के कहा—नालायक से पहले कह रहा था दीवाली देखने मत जा। दीवाली से मुसलमानों का सरोकार ?

इतनी चोट खाकर रहीम ने अच्छी तरह समझा कि मुसलमानों को हिन्दू त्यौहारो में शरीक नही होना चाहिए। मै कभी दीवाली की रोशनी देखने नहीं जाऊँगा।

× × ×

घटना को कई वर्ष बीते। रहीम को यह याद नहीं। उसके बाप का तबादिला देहात में हुआ। रहीम को हिन्दुओ की चीजों के छूने में एक खास

प्रकार का आनन्द आता था। कुए पर हिन्दू स्त्री पानी भर रही है, निगाह बचा-
कर पास जाता और मिट्टी का घड़ा छूता, औरत बडबडाकर घर लौट जाती।
हंडी जमीन पर डाल दी गयी। कोई लड़की अपने बाप के लिए रोटी ले जा रही
है, उसकी रोटी छू ली। दिन में एक घटना ऐसी न हो तो उसकी रोटी न पचती,
रात को नीद न आती। पुलिस के थानेदार के लडके से कोई कहने की हिम्मत
कैसे करे?

लोग बड़बड़ाते, गाली देते, इससे रहीम को और भी मजा आता। वह
रोजमर्रा ऐसी नई-नई शरारते खोज निकालता। उसका भाव दिन पर दिन
दृढ़ होता रहा...

भातृ-युद्ध

सन् १९४६, सोलह अगस्त का दिन।

पटना नगर के राज-पथ पर सन्नाटा छाया था। चारों ओर उदासी और विषाद फैला हुआ था। वातावरण काफी गम्भीर था। इक्के-दुक्के मनुष्य सहमे और चौकन्ने-से सडक पर चल रहे थे। उनकी आकृति पर प्रश्नवाचक चिन्ह स्पष्ट रूप मे अंकित था।

प्रातःकाल नौ बजते-बजते वातावरण की यह गम्भीरता 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' और 'अल्लाहो अकबर' के नारो से भंग हो गयी। अस्पष्ट और क्षीण घोष, कुछ ही क्षणो में स्पष्ट और प्रबल सुनायी देता और फिर कुछ ही मिनटो मे क्रमश. क्षीण होता हुआ विलीन हो जाता। साथ ही नभ-मण्डल का वह कम्पन भी शान्त हो जाता जो इन घोषों के कारण उत्पन्न होता था और फिर पहले से भी अधिक, असह्य जड़ता वातावरण को स्तब्ध बना देती।

कुछ-कुछ अन्तर से एक के बाद एक, अनेक टोलियाँ चली गयीं। उनका आदि-अन्त नही था। इन टोलियो मे कालेज-हाई स्कूलो के तरुण, शिक्षा-प्राप्त युवक थे, प्रोफेसर-अध्यापक थे, प्रारम्भिक स्कूलो के पढ़नेवाले आठ-आठ, नौ-नौ साल के नन्हे-नन्हे बालक भी थे। इक्के-टांगे हाँकनेवाले थे, साग बेचनेवाले, कुजड़े और गरीब कुली थे। क्लर्क-आफिसर थे, दुकानदार और धनिक थे। किसी के तन पर फटे-पुराने चिथड़े थे और कोई कोट-पतलून में हिन्दुस्तानी साहब बना था। कोई हड्डियों का ढाँचा भर था और किसी के हृष्ट-पुष्ट शरीर पर इतना मांस था कि उससे दो मन के पुतले तैयार किये जा सकते थे। किन्तु इन विषमताओं से, उन अन्तस्तल मे, उनकी अन्तः-स्फूर्ति में कोई भेद नही था। विविध वय, स्थिति और वर्ग के अनगिनत लोग, एक ही विचार, एक ही आकाक्षा और संकल्प से प्रेरित होकर चले जा रहे थे जैसे सबकी मंजिल एक हो, सबका साधन और साध्य एक हो।

और उनके घोषणों से उनका दृढ संकल्प प्रतिध्वनित हो रहा था। इन नारों को सुनते-सुनते सतीश की चिन्तन-शक्ति कुण्ठित हो गयी। वहमूक

अन्तस्तल और आतकित मन से इन टोलियो को पार करके कालेज पहुँचा। यहाँ भी मैदान में एकत्रित मुस्लिम विद्यार्थियो का कोलाहल सुनायी दिया। सतीश के साथ ही कालेज के प्रिन्सिपल ने आँगन मे पॉव रखा। प्रिंसिपल को देखकर विद्यार्थी जोर से चिल्लाये—पाकिस्तान जिन्दाबाद !

"हिन्दुस्तान जिन्दाबाद !"

नारे सुनकर सतीश का मस्तिष्क स्तब्ध-सा हो गया था। उसने अनुभव किया, 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' का नारा सहसा उसी के मुँह से निकल गया है। ध्वनि की शक्ति से वह चौक पड़ा।

यह उसका भ्रम था। ध्वनि उसके हृदय मे गूँजकर रह गयी। कंठ ने स्वर प्रदान नही किया और ध्वनि के इस अन्तः-विस्फोट के कारण ध्वनि मे व्यक्त होने की अपेक्षा अधिक सामर्थ्य आ गई थी। इस सामर्थ्य से उसकी मानसिक जड़ता छिन्न हो गयी। चेतना तीव्रता से काम करने लगी। इस तीव्रता के कारण वह अपने विचारो मे कोई क्रम नही स्थापित कर सका।

पाकिस्तान के विरोध मे मेरे मुँह से सहसा 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' का नारा क्यों निकल गया है ? पाकिस्तान, हिन्दुस्तान ! क्या पाकिस्तान ? वह सद्यः प्रसूत है या उसका कोई इतिहास है ? वह भूत, वर्तमान और भविष्य में से किस काल की वस्तु है ? वह पहिले नही था, अब नही है, सम्भवतः भविष्य में न हो ? यदि उसका अस्तित्व भविष्य के गर्भ में है तो वह आबाद कैसे हुआ, जो उसके जिन्दा होने की घोषणा की जा रही है ? क्या हिन्दुस्तान के रहने से पाकिस्तान समाप्त हो जायगा ? या यह कि पाकिस्तान के जीवित हो जाने पर हिन्दुस्तान अपना अस्तित्व खो बैठेगा, जो मेरे हृदय में उसका अस्तित्व अपने को व्यक्त करने के लिए इस तरह व्याकुल हो उठा ? यदि दोनों 'स्तान' है या होगे तो इन दोनों में इतना विरोध क्यों है ? विरोध नही है तो एक दूसरे को परस्पर अनुमोदन भी प्राप्त नही है।

एक-एक करके फिर ये ही प्रश्न। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों स्तानों का औचित्य और अनौचित्य हिन्दुस्तान जिन्दाबाद और पाकिस्तान जिन्दाबाद...

इसी समय उसको दृष्टि अपने सहपाठी मुनव्वर पर गयी जो मुस्लिम

विद्यार्थियों को कालेज मे जाने से रोक रहा था । मुनव्वर की गिनती सुशील और सभ्य विद्यार्थियों मे होती थी । वह सतीश के साथ चतुर्थ वर्ष मे दर्शन-शास्त्र पढता था !

"भैया मुनव्वर, यह सब क्या हो रहा है ? यदि इस्लाम या उसके सिद्धान्तों का जय-घोष किया जाय तो उसका कोई अर्थ भी लगाया जा सकता है, किन्तु एक स्वप्न और वह भी काल्पनिक स्वप्न के लिए ये सारे प्रयत्न क्यो ?"

सतीश ने मुनव्वर के पास जाकर प्रश्न किया ।

"सतीश, तुम लोग अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में होनेवाले प्रति क्षण के परिवर्तन से परिचित रहोगे, लेकिन यह सोचने की तकलीफ गवारा नही करोगे कि पडोस में रहनेवाला मुसलमान क्या सोचता है ? आप लोग पाकिस्तान को स्वप्न कहें या और किसी नाम से याद करें, किन्तु यह सत्य है कि आज भारत के प्रत्येक कोने में बसा हुआ मुसलमान अपने को एक दूसरे का अंग अनुभव करता है । इस माँग ने सबको संगठित कर दिया है । प्रत्येक मुसलमान समान भावो से स्पन्दित और एक प्रकार-सी आकाक्षा रखता है । इसमे धार्मिक कारण कम और दूसरे कारण ही ज्यादा है । राष्ट्र उस जन-समूह का नाम ही तो है, जिनके सुख-दुःख और उद्देश्य-आकाक्षा सामान हैं । हमारी इस राष्ट्रीयता का प्रतीक, पाकिस्तान, जितना यथार्थ है, उतना वास्तविक तो हिन्दुस्तान भी नही है । पाकिस्तान के नारे मे इस्लाम का नारा भी शामिल है । पाकिस्तान नही तो इस्लाम भी नही, इस्लाम के लिए पाकिस्तान की जरूरत है !"

नारे लगाते हुए मुस्लिम विद्यार्थी चले गये ।

कक्षा में अध्यापक दर्शन-शास्त्र के गहन सिद्धान्त की व्याख्या कर रहे थे, किन्तु सतीश का मन उस ओर नही था !

× × ×

सतीश के पिता जन्म से कायस्थ, किन्तु स्वभाव से ब्राम्हण थे । वे एक हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक थे । भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुरागी । युवावस्था में ही वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा लेकर गले में तुलसी-माला और कंठी धारण की । तब से, वैष्णव-सन्त की तरह अहिसा और अक्रोध

का पालन करते आये हैं। राजनीति तथा सासारिक परिस्थितियो से निरपेक्ष रहने के कारण वे महात्मा गांधी की प्रवृतियो से अधिक परिचित नही थे, किन्तु गान्धीजी के अहिसा-सम्बन्धी प्रयोगों से उनकी आस्था वैष्णव आचार-विचार में अधिक दृढ हो गयी थी ! सतीश को अहिसा, भक्ति और वैष्णवी श्रद्धा पैतृक सम्पत्ति के रूप मे मिली थी। उसकी स्वाभाविक गम्भीरता दर्शन-शास्त्र के अध्ययन और मनन के कारण अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी थी। अन्य युवकों से उसे अनायास ही पृथक् किया जा सकता था।

१६ अगस्त की घटना के पश्चात् वह स्वयं अपने में परिवर्तन अनुभव करने लगा। उसका मन सदा क्षुब्ध और चिन्तित रहता। दिन-दिन भर सोच-विचार में निकल जाता, लेकिन समस्या का हल नही सूझ रहा था। एक दिन उसने दर्शन के अध्यापक से पूछा—

"यदि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करे या उसे युद्ध के लिए ललकारे तो क्या दूसरा राष्ट्र चुपचाप बैठा रहे ? सशस्त्र और उद्दण्ड राष्ट्र के विरुद्ध किसी राष्ट्र का अहिसक तथा नम्र बना रहना उचित है ?"

"नही। अहिसा व्यक्ति का धर्म है, समूह का नही। राष्ट्र का अधिकांश भाग अहिंसा का आचरण नही कर सकता। अहिसा व्यक्ति को ऊँचा उठाती है, अहिसक व्यक्ति पूज्य और श्रद्धेय बन सकता है, किन्तु राष्ट्र या समूह को वह उतना ही गिरा भी सकती है। अशोक के समय मे इसका प्रयोग हो चुका है। जिसका परिणाम निकला—मौर्य साम्राज्य का पतन। अब तक का संसार का इतिहास बतलाता है, हिंसा से व्यक्ति गिरता है, किन्तु राष्ट्रों ने उन्नति ही की है। महात्मा गाधी ने इस इतिहास में नया सर्ग जोड़ा है, जब कि किसी देश ने अपनी मुक्ति के लिए अहिसा का प्रयोग राजनीतिक साधन के रूप में किया है। गांधीजी का प्रयोग बहुत कुछ सफल हुआ है, किन्तु जब भारत पूर्ण स्वतन्त्र हो जायगा, उस समय वह अपनी आन्तरिक सुव्यवस्था और बाह्य सुरक्षा तथा पर-राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी अहिसा का प्रयोग करेगा, इसकी सम्भावना नही दिखायी देती। यदि उस समय तक गांधीजी जीवित रहे और भारतीय नवजात स्वतन्त्रता को इस अग्नि-परीक्षा में डालने का साहस करेंगे

तो उस परीक्षण से मानव-जाति की बहुत बड़ी समस्या को हल करने में एक नया दृष्टि-कोण ससार के आगे आयेगा। किन्तु लक्षण ऐसे नही दिखायी देते। जिस देश ने बीस वर्ष तक अहिसा का प्रयोग किया है, अहिसा के लिए अनेक बलि-दान हुए, वही देश कितना हिसक बन गया। और यह सब कुछ हुआ है, गाधी-जी की उपस्थिति मे। हमारा वर्त्तमान राजनीतिक आन्दोलन अहिसा का अच्छा उदाहरण है। हमारी राजनीतिक चेतना जिस समय कुछ व्यक्तियो तक सीमित रही, गाधीजी की अहिसा सफल दिखायी दी, किन्तु ज्यो-ज्यो वह साधारण जनता के प्रयत्नों का बल प्राप्त करती जा रही है, अहिसा असफल और अव्यावहारिक होती जाती है। सन् १९२१, १९४२ और १९४६ पर विचार करने पर बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।"

सतीश की गम्भीरता और बढ गयी।

ज्योंही सतीश प्रात·काल उठा, उसे घर मे रोने-पीटने की आवाज सुनायी दी। घर की बूढ़ी नौकरानी दहाड़ मार-मारकर रो रही थी। बूढा नौकर ज़मीन पर बेहोश पडा था। और उसकी पुत्रवधू निर्दयता से छाती पीट-पीटकर जमीन-आसमान एक किये दे रही थी। उनकी आँखो से आँसुओ का ताँता लगा हुआ था।

पिताजी ने रुँधे कण्ठ से कहा—"बेटा सतीश, अपना मोहन कलकत्ते के दगे मे मारा गया।"

मोहन नाम के साथ सतीश की कितनी स्मृतियाँ जुड़ी हुई थी। मोहन महरी का लडका होते हुए भी उसका बचपन का साथी था, ऐसा साथी जिसके साथ रहकर उसने कभी भाई की कमी अनुभव नही की। साथ खेले-कूदे, खा-पीकर बड़े हुए।

घण्टों रोने के बाद जब सतीश ने अपना मुँह धोया तब उसे लगा, मोहन उसके सामने खड़ा-खड़ा हँस रहा है। उसका वही पहिले-जैसा अक्खड़पन। चेहरे पर वही निश्चिन्ता और मस्ती।

तीन महीने पहले ही वह गौना करके अपनी स्त्री को लाया था। पति-पत्नी को साथ रहते महीना भी नहीं बीता था, पत्नी के हाथ की अभी मेंहदी

भी नही पुछी थी कि मोहन को अपनी नौकरी पर कलकत्ता जाना पड़ा। जिस दिन वह कलकत्ता गया, उसकी बहू कितनी विवशता से उसकी तरफ टुकुर-टुकुर निहार रही थी। उस समय इस दृश्य से सतीश का हृदय भी विचलित हो गया था।

मोहन की चौड़ी छाती, उसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ, हृष्ट-पुष्ट शरीर, ये सब क्या यों ही रौंद देने के लिए थे ? उस युवक पर देश गर्व कर सकता है। उसकी जवानी देश की सेना की शोभा बढ़ाती ।

फिर उसकी दृष्टि उस सोलह वर्ष की अबोध बालिका पर पड़ी, जो यथार्थ में उसकी भाभी थी, जिसने अभी अलसाई आँखों से संसार की तरफ ताका ही था कि उसका सुहाग, उसका सारा सुख उन लोगों के द्वारा लूट लिया गया, जिनका उसने स्वप्न में भी कुछ नही बिगाड़ा था। उसका हिन्दुस्तान से क्या सम्बन्ध था ? और पाकिस्तान से क्या दुश्मनी की थी उसने ?

सतीश जब-जब घर आता उसकी दृष्टि मोहन की विधवा पत्नी पर पड़ती। उसके अस्त-व्यस्त केश, विषण्ण नेत्र, उदास आकृति को देखकर उसका हृदय स्तब्ध रह जाता। जो कुछ ही दिन पहले इतनी चंचल दिखायी देती थी, जैसे उसके शरीर में रक्त के स्थान पर पारा भरा हो, लेकिन अब चंचलता का नाम भी न था। चेहरे पर विषाद की छाया अधिकाधिक गहरी होती जाती थी। सतीश चाहता वह उसकी नजर न आये, इसी से वह भरसक घर से बाहर ही रहता।

एक दिन उसने पत्रों मे देश के एक नेता का वक्तव्य पढ़ा—वहाँ (नोआखाली में) स्त्रियो को भूमिशायी करके दुष्टों ने अपने पाँव के अँगूठे से उनके मस्तक का सौभाग्य-सिन्दूर पोंछ डाला, मंगलसूत्र तोड़ दिये, हाथ की चूड़ियाँ फोड़ डाली और फिर... पढ़-पढ़कर मानवता काँप रही थी और युवको का हृदय खौल रहा था।

× × ×

"हर हर महादेव !" एक बार और जोर से—"हर हर महादेव !!"

इस घोष मे कितनी शक्ति थी, कितनी चेतना थी और साथ ही कितना भय और आतक था !

युवको की टोली इस घोष मे अपने आपको भुलाकर बढ़ी जा रही थी डाक्टर हाशिम के घर की ओर, और उस टोली का नेतृत्व कर रहा था सतीश ।

किन्तु यह क्या ? डाक्टर साहब के मकान में किसी प्रकार का कोलाहल नही है । भय का कोई चिन्ह नही । वे लक्षण नही थे जो मृत्यु को निकट आया जानकर मानव के निवास-स्थान पर अपने आप अकित हो जाते है और जिन चिन्हो को युवको की वह टोली कई जगह देख चुकी थी । युवको ने सोचा घर मे कोई नही है । टोली लौटना ही चाहती थी कि भीतर से मधुर, कोमल और संयत स्वर सुनाई दिया—

"आप लोग लौट क्यो रहे है, आइए, हम स्वागत करते है ।"

सतीश ने देखा, डाक्कर साहब की पत्नी उसकी ओर एक टक देखती हुई आमत्रंण दे रही है । इस महिला में ऐसी निर्भयता थी, उसके नेत्रो मे ऐसी आत्मीयता थी कि सतीश ने अनुभव किया, उसके रूप में उसकी सहोदरा बहिन खडी है ! उसके हाथ का शस्त्र रुक गया । डाक्टर ने कहा—

"आप लोग बाहर ही क्यो रुक गये ? आइए ! आप लोगों का यह प्रयास इस बात का समर्थन करता है कि भारत एक राष्ट्र नही है । एक जाति या देश का बदला देश और जाति के रूप मे उसी समय चुकाया जाता है, जब दोनो भिन्न हो और दोनों में काफी दुश्मनी हो । उस समय विरोधी के किसी अंश को कही भी हानि पहुँचाकर सन्तोष किया जा सकता है । किन्तु भारत की हजारों वर्ष की परम्परा इन दोनों जातियो को एक ही दिशा में अग्रसर करती रही है । यदि दुर्भाग्यवश दोनों जातियाँ, दो समानान्तर रेखाओं पर चल ही दी है तो किसी समझदार आदमी के लिए उतावलेपन से, बिना सोचे-विचारे यह निर्णय कर लेना उचित नही कि ये दोनों कभी एक मार्ग पर नही चलेंगी । इस विचार से आप लोगो के एक राष्ट्र के सिद्धान्त को बल नही मिलता, बल्कि उन लोगों का समर्थन होता है, जो भारत में राष्ट्र बनाना चाहते है ।"—डाक्टर के नेत्रों मे एक चमक आ गयी थी । उन्होंने कुछ रुककर कहा—"जहाँ तक मेरे परि-

वार के प्राणियों का प्रश्न है, हम प्रस्तुत है। गांधीजी से हम लोगो ने भी काफी सीखा है। उन्होंने देश को मारना नही मरना सिखाया है। और हमने भी उनका यह पाठ अच्छी तरह सीखा है।"

सब तरुण चुपचाप खड़े थे।

"और आप लोग यह भूलते है," डाक्टर की पत्नी ने कुछ आगे आकर सरल ढंग से कहा—"आज मुस्लिम औरतें हिन्दू स्त्रियों की विपत्ति से खुश नही है। इस्लाम की अपेक्षा स्त्रीत्व का नाता ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, जो हिन्दू और मुसलमान औरतो को एक ही सतह पर खड़ा करता है, उनके अपहरण और अपमान की कथा से हर औरत दुखी होती और वे अपने मर्दो की जघन्यता से शर्मिन्दा है। यदि हम लोगो को मौका मिले तो हम उन बहनों की सेवा मे अपना पूरा जीवन बिता दें। लेकिन पतितों को उठाने की अपेक्षा यह ठीक रास्ता नही है कि हम उनके बदले कुछ और औरतो का धर्म भ्रष्ट करके अपना गुस्सा बुझाये।"

× × ×

प्रातःकाल का समय था। बंग-भूमि का हरा-भरा आँचल। दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। पूर्व दिशा में नारियल के वृक्षों की कतार के पीछे सूर्य का अर्ध-बिम्ब प्रदीप्त हो रहा था। निकट के तालाब की लहरों पर अरुण-आभा किलोलें कर रही थी।

एक सकड़ी-सी पगडंडी पर तीन पथिक चल रहे थे। उनकी आकृति बालसूर्य की कोमल आभा से चमक रही थी। आगे-आगे डाक्टर हाशिम थे, बीच मे उनकी पत्नी और अन्त मे सतीश !

उनकी चाल इस बात को प्रकट कर रही थी कि उनके पग दृढ़ संकल्प के साथ मानवता की सेवा के लिए आगे बढ रहे है।

—×—

दो कैदी

"मोहन, तुम अब तक उदास हो ? छः महीने की सजा में ही बच्चू घुले जा रहे हो । लोग घर छोड़ कर बरसो परदेश कमाते है, मान लो छः महीने सैर करने आ गये थे । घर में औरत नही, उस पर इतनी बेचैनी !"

"दादा, आदमी औरत के लिए घर की चिन्ता नही करता । छोटे बच्चे को जवान आदमी से ज्यादा घर की याद सताती है । एक प्राणी ही घर नही होता, बहुत कुछ मिलकर घर बनता है । रही मान लेने की बात, सोचता हूँ, छः महीने यही काटने है, लेकिन दूसरे क्षण मन मे न जाने कहाँ से उदासी और सोच-विचार भर जाता है । हवा के झोके रुक-रुककर आते है, मन में रुक-रुककर अन्धड चलता है । अगर सजा सुनाते वक्त मजिस्ट्रेट दिमाग में ऐसी सुई लगा दे कि जितने दिन जेल मे रहना है, उतने दिन दिमाग कुछ न सोचे तो बड़ा अच्छा हो । घड़ी मे चाबी लगायी जाती है, उसी तरह की कोई चाबी हमारे दिमाग मे भर दी जाय की जिस दिन सजा खतम हो उसी दिन हमारे दिमाग जागें । ऐसा मालूम हो, रात कही सो गये थे, दिन निकलने पर घर जा रहे हैं । जागते हुए सोना मुश्किल है ।"

"तुम यहाँ का रस क्या जानो ? हमारे साथ उठो-बैठो, गाओ-बजाओ, तुम्हें जेल की जिन्दगी का रस मिलेगा । मेरी आधी उम्र जेल में गुज़र गयी । दाढ़ी-मूँछ नहीं फूटी थी । तुम से दो तील साल छोटा हूँगा । विवाह हुआ था, नया खून जोश खा गया । एक खून करके बीस साल के लिए यहाँ आया । साल भर तक मन नही लगा, दिन-रात लगता था जैसे कोई बुला रहा है । कुछ दिनों में सिर के बाल पक गये, दाढ़ी-मूँछ बढी, साल भर में तीस-पैतीस का दिखायी पड़ा । माँ और महरी मिलने आयी, मै सामने खड़ा था, मुझे पहचान न सकीं ।"

"इस हालत में तुम अब तक जिन्दा कैसे रहे, दादा ?"

"पागल, क्या कोई जिन्दा रहने की चाह से जीता है या मरने की इच्छा से मर जाता है ? जीते इसलिए हैं कि जीना है, मरते इसलिए हैं कि मर जाना है । मन-समझौती है, मन ने माना यह औरत है, यह दोस्त है; और चलने

लगी हमारी दुनिया। यहाँ भी साथी कैदियों से नेह होता है, तरह-तरह के नाते निकलते हैं, मन रम जाता है इस नई दुनिया में। हम लम्बी सजा के कैदी चार-छः साल फाटक से बाहर कदम नही रख पाते, अन्दर काम करते हैं, दारोगाजी की खुशामद कर-कर के आधी सजा खत्म करते हैं, तब कही वार्डर बनाये जाते हैं और मामूली कैदियों पर हुकूमत करने का हक मिलता है। बाहर आयें तो राहगीरों से माँग-माँग कर चिलम-तमाखू की तलब मिटे, नये-नये लोगों को देखें। साल-छ. महीने की सजा भी कोई सजा है, देखते-देखते कट जाती है। फिर तेरे बड़े भाग हैं, इतनी जल्दी बाहर का काम मिला। भीतर किसी दूसरे वार्डर के नीचे काम करता तो नानी याद आ जाती।"

"तुम्हारे लिए साल-छः महीने काट देना हँसी-खेल है दादा। यहाँ अट्ठाइस दिन ऐसे गुजरे जैसे अट्ठाइस बरस! चार-दीवारी मे रहते तंग आ गये। कल पहिली बार तुम्हारे साथ निकला तो दूर का आदमी दिखाई नही दिया, जैसे आँखों की रोशनी भी बँध गई हो। यह धारीदार कपड़ा, रोज़-रोज एक तरह का पहनावा और वह भी बेमाप का, जैसे चाँद-ग्रहण मे माँग कर लाये हों। पाजामे का एक पाँव घुटनो तक तो दूसरा पिडलियो तक। सिर बड़ा, टोपी छोटी। बन्दर नचानेवाला आदमी आता है न? जब बन्दर अपनी रूठी बन्दरी को मनाने सुसराल जाता है, मदारी उसे सजाने के लिए जैसी ओछी टोपी उढ़ाता है, यह टोपी भी वैसी ही लगती है। इन वाहियात कपडों को जबर्दस्ती पहनना पड़ता है, नही लँगोट लगाना अच्छा। इन कपडों मे हम बन-मानुस बन जाते है, रास्ता चलने वाले इस निगाह से देखते है, जैसे हम सीधे किष्किन्धा से आ रहे है। लोगो की नजरों में आने के बजाय भीतर काम मिले तो अच्छा सड़क पर चलते, लगता है, ज़मीन मे गड़ जाऊँगा!"

"तुम निरे दुध-मुँहे बच्चे मालूम पड़ते हो, मोहन! अपनी किस्मत सराहो जो मुझ जैसा वार्डर तुम्हें मिला। कोई दूसरा होता तो तुम्हें तंग कर देता। यहाँ वही आदमी मज़े में रहेगा जो सब की छाती पर मूँग दले। तुम नये-नये हो। रास्ता चलनेवालों को अपनी दुनिया का आदमी मत मानो, उनसे लजाओ नहीं।"

आठ-दस कैदियो की टोली जेल से कुछ दूर सडक पार कर जेल के असिस्टेंट-सुपरिण्टेण्डेण्ट के बॅगले पर पहुँची। कैदियो के दोनो पॉवो मे लोहे के कडे थे। साथ में लोहे की छोटी-छोटी जंजीरें और ताले-कुंजी जैसी पीतल की दो चार चीज़ें पडी थी। इनसे चलते समय छम्-छमाम्-छम् की ध्वनि, अजीब बेसुर-ताल के निकलती थी। इस आवाज़ की तरफ खास कर बच्चो का ध्यान जाना जरूरी था। कैदी अपने चारो ओर के वातावरण से अनजान जा रहे थे। दो-दो, तीन-तीन की टोली बन गई थी। वार्डर और मोहन अपनी राम-कहानी में ऐसे तल्लीन थे कि उनकी बातों का सिलसिला बँगले के अहाते में पहुँचने पर टूटा। वार्डर के चेहरे पर दयालुता थी और मोहन की आकृति पर भोलापन !

कैदियों के पीछे एक सिपाही लापरवाही से आ रहा था, जैसे कैदियों की तरफ से कोई चिन्ता नही। दस आदमियों को एक आदमी ले जा रहा है, इस दृश्य को देख कर उस ग्वाले की याद आती है जो अकेला सौ-पचास गाय-भैसो को हाँक कर चराने ले जाता है। गाय-भैस के गले मे घण्टी बॉध ग्वाला एक स्थान पर बैठा उनकी गति-विधि का ज्ञान रखता है, कैदी के पॉवो में डाली गयी बेडी उन घटियो की तरह है।

सिपाही दरवाजे पर रहा। एक कैदी ने झाड़ू-टोकरा नीचे रख कर कहा—"चलो पहिले "आठ[१]-कण्टिये"* की दो-चार बाजियाँ हो जायँ, फिर कुछ काम किया जायेगा।"

"इस जगह आते ही मन चाहता है, दिल खोल कर कबड्डी खेलें। नया सिपाही भी एक ही डरपोक है, बात-बात में कहता है, साहब देख लेगा, साहब आ जायेगा। आ जायगा तो आ जाने दो, यहॉ परवाह किसे है ! काम ही करना था तो अपना घर का करते, काम के लिए जेल क्यों आते ? जो होगा देख लेंगे। मोहन, कही से कोयला तो ला।"

कोयला आया। दो-दो की जोड़ी बनी। बँगले के सामने के पार्क में मियाँ

[१]एक प्रकार का खेल जिसमें दो साथी खेलते है और आठ-आठ कंकरियाँ रखी जाती हैं।

जी ने नमाज पढ़ने के लिए एक चबूतरा बनवाया था, वही इन मस्तानों की महफ़िल जमी। मोहन खेल में शामिल नही हुआ। एक आदमी साथी न पाकर खाली बैठा रहा। आग्रह करने पर मोहन बोला—

"मेरा मन खेल-कूद मे नही लगता भैया! मेरा कहा मानो, तुम लोग भी पहले काम कर लो, उसके बाद फ़ुर्सत से खेलने बैठो। काम करने आये है, इस तरह बैठना ठीक नही।"

"कल का लड़का हम पर ही हुकूमत चलाने लगा। यहाँ काम करने लगो तो दम लेने की फ़ुर्सत न मिले और न करो तो कोई पूछनेवाला नही। थोडा-बहुत काम करके दिन बिताना है, अगर तुम्हारी तरह मेहनत करने लगें तो रह लिये जेल में।"

वार्डर ने भी उस कैदी के स्वर में स्वर मिलाया—

"मोहन, यह ठीक कहता है। ज्यादा और अच्छा काम करोगे, कोई चैन से न बैठने देगा। मीठा गन्ना जड से उखाड़ा जाता है।"

"तब तुम लोग खेलो, मना नही करता। मै काम करता हूँ। जितना होगा करूँगा, बच जाय तो तुम लोग हाथ बँटा लेना।"

मोहन घर झाड़ने चला गया।

"तुम निरे काठ के उल्लू हो। जाओ बैल की तरह जुतो काम में। तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है, कोई क्या करे?" वार्डर ने कहा, किन्तु मोहन ने जैसे सुना नही।

× × ×

सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट अब्दुल करीम तीन-चार वर्ष पहिले ज़िला जेल का सहायक दारोगा था। कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में उसने सत्याग्रही कैदियो पर ऐसी सख्ती की कि अँग्रेज़ अफसर अपने मातहत की प्रसंशा करते नही थकता था। अब्दुल करीम को तरक्की मिली, प्रान्त की बड़ी जेल मे सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाया गया। यूरोपियन सुपरिण्टेण्डेण्ट नाम का था। वह अब्दुल करीम को कार्य सौप कर निश्चिन्त था। अब्दुल करीम ने कैदियों से खूब काम लिया। उसको और दूसरे जेल-अधिकारियों को वेतन से दुगनो-

तिगनी आमदनी होने लगी । सरकारी खजाने में जेल के मद मे पहिली बार रुपया जमा हुआ । राजनीतिक बन्दियो पर तरह-तरह की सख्ती होने लगी, वहुत से बन्दी क्षमा-पत्र भर कर चले गये। ब्रिटिश सरकार इतन बड़े राजभक्त का सम्मान न करती तो सम्भवत उनके शासन के इतिहास मे क़ृतघ्नता का एक बड़ा उदाहरण शेष रह जाता। इसी हेतु पिछले साल सम्राट् के जन्म-दिवस पर उसे 'खान बहादुर' की उपाधि मिली। खान बहादुर का सिद्धान्त था, मामूली बातचीत मे भी कैदी की माँ-बहनो से नाता न जोड़ा जाय तो हम अपने पद तथा सम्यता की रक्षा नही कर सकते ।

जेल के कैदियों के साथ बर्ताव मे कही स्नेह या नम्रता का लेश न आये, उसके लिए उसे आरम्भ में बाहर तथा घर भी कठोरता का जीवन बिताना पड़ा था । अब वे इसके इतने अभ्यस्त हो गये कि उनकी भाषा का शब्द-कोश निश्चित हो चुका था, उस कोश में नया शब्द मुश्किल से प्रवेश करता । जेल के ओहदेदारो को बाहर से सम्बन्ध जोडने का समय नहीं मिलता, पत्नी और बच्चो के साथ वे लोग कम रहते है, इसलिए स्वभाव मे खिजलाहट आ जाती है, कैदी बिना आपत्ति के उनके शब्द को देव-वाणी समझकर पालन करते है इसलिए परिवार या मित्र-मण्डली से भी वैसी ही आज्ञा-परायणता की आशा रखते है ।

खान बहादुर की पत्नी अपने पति के गुणो से अप्रभावित होकर पतिव्रता धर्म से कैसे वचित रह सकती थी ? पति से उसे दुत्कार-फटकार मिलती है, तो वह अपने बच्चो और नौकरों से प्यार क्यो करे ? दिन मे दस-पाँच बार घर का वातावरण गरम न होना अस्वाभाविक था । बड़े लड़के की शादी हो चुकी थी । उससे छोटी लड़की सलीमा १५ या १८ वर्ष की थी, लेकिन योग्य वर की खोज मे अभी उसकी शादी नही हुई थी । तीन साल पहिले तक सलीमा स्कूल जाती थी । किन्तु खान बहादुर जवान लड़की का स्कूल जाना ठीक नहीं समझते, इसलिए अब वह घर पर ही रहती है । स्कूल के दिनों में सलीमा ने अपनी सहेलियों को हँसते-गाते देखा था । तरह-तरह की कहानियाँ पढी थीं । उस समय उसे अनुभव हुआ कि किस तरह हमारे घर में जिन्दगी का गला घोंट

दिया गया है । जहाँ जोवन अपनी सरल गति पर न चल कर शासन और शक्ति के इशारों पर चलने के लिए विवश किया जाता है । घर में पर्दे का कड़ाई से पालन होता था । स्कूल छूटने के बाद जब इस कड़ाई के वातावरण में सलीमा ने अपन आप को देखा तो वह लम्बी साँस लेकर रह गई । घर मे दो-तीन उर्दू मासिक और साप्ताहिक आते थे । कहानियो की नायिकाओं से अपनी तुलना करती तो उसे अपनी क्षुद्रता की अनुभूति होती । बॅगले के बाहर उसके लिए कल्पना का लोक था । आकाश मे उड़ने वाली चिड़ियों को देख वह सोचती, काश वह लड़की न होकर चिड़िया बनती, जिसे उड़ान भरने की पूरी आजादी है । इस आयु मे जब यौवन रोम-रोम में चपलता का संचार कर रहा था, घर वाले उसे बिना आयु के गंभीर तथा चेतना-हीन बनाने के लिए तरह-तरह के बन्धन लाद रहे थे । एक ओर अकुर पृथ्वी से ऊपर उभरने के लिए अभी शक्ति लगा रहा था, दूसरी तरफ किसी मूर्ख मनुष्य ने उस पर मन भर का पत्थर रख दिया, जिस से वह पृथ्वी के गर्भ में ही सड़ जाय । मुक्त वायु मे श्वास न ले । परस्पर विरोधी इन दो प्रवृत्तियों के बीच सलीमा समझ नही पा रही थी अपने मार्ग को । उसका स्वभाव विचित्र बनता गया । पैतृक सम्पत्ति और कुल-परम्परा में दूसरे पर शासन करने, बात-बात पर झुँझलाने, हर किसी पर अधिकार जताने की प्रबल आकांक्षा मिली थी और इस संकुचित क्षेत्र में रहने के कारण उसमें हद दर्जे की निराशा, जीवन के प्रति निरुत्साह और अपनी अकिचनता की अनुभूति दिन पर दिन बढ़ती गई ।

घर में पर पुरुष नही आता था, पर कैदियों के लिए प्रतिबन्ध नहीं था । जेल अधिकारियो की दृष्टि मे जेल के कपड़े पहनते ही मनुष्य में मानवीय भावो का सर्वथा अभाव हो जाता है । कैदी में न हृदय होता है और न मस्तिष्क ! वे होते है ओहदेदारों के इशारे पर नाचने वाले काठ के पुतले, जड़, अचेतन ! उनसे पर्दे की क्या आवश्यकता ? कैदी घर झाड़ते, कपड़े धोते, बर्तन माँजते बाहर की हरियाली सीचते, घास छीलते ।

घर की सफाई सलीमा की निगरानी में होती । मोहन पहली बार जब कल भीतर गया तो सलीमा ने देखा यह-अनोखा कैदी है ! बात-बात में हाथ

नहीं जोड़ता। बात करने मे रस नही लेता। काम की धुन, नीची गर्दन किये काम मे लगा रहता है। इस आचरण मे उसे कही अपनी उपेक्षा दिखाई दी।

आज मोहन जब अन्दर गया तो सलीमा स्नान करके आ रही थी। इज़हार पर मलमल का लम्बा बारीक कुर्त्ता पहिने थी। दुपट्टा नहीं था, सिर के लम्बे-लम्बे बाल खुले और इधर-उधर बिखरे हुए थे। काले बालो की घटा मे उसका गोरा और भरा मुँह बादल मे घिरे चाँद-जैसा लगता था। मोहन को देखते ही उसने भौंहे सिकोड कर कहा—"कैदी, कल तूने घर अच्छी तरह नही झाडा। कोनों मे कचरा जमा था। कुर्सी-मेज पर धूल छाई थी। अब्बा-जान ने जूते पहिने तो उनमे एक-एक इंच रेत थी, देखते ही आग-बबूला हो गये, गनीमत हुई, तू यहाँ नही था। तुम लोग बेगार टालने नही यहाँ काम करने आये हो।"

"बीबीजी, माफी चाहता हूँ। मै घर का झाड़ना-बुहारना क्या जानूँ? यह काम औरतें कर लेती है। दो-तीन दिन बता दोगी तो फिर कभी गलती नहीं होगी।"

सलीमा का मन क्रोध से भरा था। उसने गरज कर कहा—"झाड़ने-बुहारने का काम औरतो का है, और मर्दो का काम है औरतो पर हुकूमत करना? जैसे खुद नवाबजादे है। हट्टे-कट्टे होकर भी कमाया-खाया नही गया। कही दस-बीस की चोरी की और आ गये मुफ्त की रोटी तोड़ने जेल में। झाड़ना क्यो आयेगा? बैठे-बैठे खाने को जो मिलता है?"

घर मालिकिन भी अवसर क्यो खोती? सुबह-पुबह विषय मिला। गालियों के शब्द-कोष में जितने शब्द हैं उसने एक-एक करके क्रम से सुना दिये। मोहन को इसकी आशा नही थी कि एक जवान बेटी के आगे एक नौजवान को सभ्य घराने की औरत ऐसी गालियाँ सुना सकती है? किन्तु उसे यह कहाँ मालूम था कि उस स्त्री की दृष्टि में वह पुरुष न होकर साधारण कैदी था।

"चल तुझे झाड़ना सिखाती हूँ"—कह कर सलीमा मोहन को कमरे में ले गई। उसने पहिला हाथ चलाया, धूल उड़कर सीधे लड़की पर गई। वह

झल्लाई—"बेवकूफ उधर से क्यों देता है,! इधर से दे। तेरा सत्यानाश जाये, मुझे दुबारा नहाना पड़ेगा।"

सलीमा सिर पर सवार न होती तो शायद काम अच्छा होता। यह करो, वैसा मत करो, यह क्या कर डाला—की बौछार ने उसके हाथ-पाँव को सुन्न बना दिया। मोहन का मस्तिष्क स्तब्ध था और सलीमा का दिमाग़ इतनी तेजी से काम कर रहा था कि कोई सिलसिला न था। एक ओर काम करने की इच्छा, दूसरी ओर सुन्दरी तरुणी के अनावृत्त सौन्दर्य को निहारने की उत्कट लालसा और उसपर बिजली का चमचम में चमकना। टेबल साफ करते समय हिलने से काँच का गिलास नीचे गिर कर टूट गया। लड़की के क्रोध का पारा अन्तिम बिन्दु तक चढ़ गया, दोनों हाथो को न रोक सकी। गृह स्वामिनी आवाज सुनकर दौड़ी आई। वाग्बाण और थप्पड़ प्रहार के ऊपर धमकी यह कि साहब को आने दे तेरी चमड़ी उधेड़ी जयेगी।

मोहन गर्दन झुकाये खड़ा रहा। हृदय धधक रहा था। मस्तिष्क पर कोई नियत्रण नही रहा था, इच्छा हुई, दोनो का गला घोट दूँ, बँगले को आग लगा दूँ और जब साहब आयेगे तो पहिले मै ही उनकी खबर ले डालूँ। किन्तु, किसी अज्ञान शक्ति ने हाथ-पाँव बाँध दिये थे। अभिमान का तीव्र हलाहल एक घूँट में पी गया। स्वयमेव हाथ काम करने के लिए उठे। साफ करने के लिये उसने दूसरा कप उठाया—सलीमा चिल्लाई—"अरे मुर्दार, रहने दे। पूरा सामान बर्बाद करना है? रहने दे! यहाँ से मुँह काला कर!"

"अच्छा बीबीजी, मै बाहर आँगन साफ करता हूँ। दूसरे साथी को भेज दूँगा।"—मोहन ने बड़े प्रयत्न से उत्तर दिया।

"दूसरे साथी को भेज दूँगा? फिर तू क्या यहाँ खाक छानने आया है? अगर मैंने तुझ जैसे की अकड़ न निकाली तो मुझे खानबहादुर की लड़की कौन कहेगा? अभी चाबुक लगाती हूँ। मैंने तुझ-जैसे कितने ही मक्कारो को सीधा किया है। मेरी तरफ घूर कर क्या देख रहा है? चल काम कर।"

"मै मानता हूँ मुझसे गलती हुई। माँ-बेटियों ने जो सजा दी वह क्या कम है? आप इतना समझिए में काम-चोर नही हूँ, दिल तोड़कर काम

करना चाहता हूं। मैने चाह कर नुकसान नही किया।"—मोहन के स्वर में रुदन था।

"अच्छा बातें बन्द कर। बाहर बर्त्तन माँजने पड़े है। जल्दी-जल्दी काम कर।

मोहन काम करने लगा। उसने सुना—उसका एक साथी ऊँचे और मधुर स्वर मे राग अलाप रहा है, दूसरे साथी हँस हँस कर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे है।

× × × ×

दूसरे दिन बँगले मे आते ही मोहन ने साथियो से कहा—"मै बाहर का पूरा काम कर लूँगा। घर की सफाई के लिए तुममे से कोई चला जाये।"

"क्या दो दिन मे पेट भर गया ? तुम खेल मे साथ न देकर सीधे भीतर चले जाते थे ?"—लच्छू ने पूछा।

"अरे, यह मोनू भी छटा हुआ है। देखने मे कितना भोला भाला दिखता है। वह खानबहादुर की लड़की है, न, उसे देखने जाता था। कल उसने कुछ कह दिया होगा"—तीसरे कैदी ने व्यग-पूर्ण स्वर में कहा।

"देखो भाई, इन बातो से मुझे दुःख होता है। मुझे यह अच्छा नही लगता।" मोहन ने रूठे मन से कहा।

"सुन लो इसकी बाते। सच कहने वाला मारा जाता है।"

दो कैदी अन्दर काम पर चले गये। मोहन कुदाली लेकर जमीन खोदने लगा। खानबहादुर ने बिलायती जाति का पौधा कही से मँगाया था। पौधा बड़ा था इसलिए गढा भी ज्यादा गहरा होना चाहिए। जमीन ऊपर पपड़ीदार थी, इसलिए कुदाली ताकत से चलानी पड़ती और मिट्टी कम खुदती। मोहन तेईस साल का युवक था। उभरी छाती, मांसल भुजाएँ, मुँह का रंग कुछ गोरा और भरे हुए चेहरे पर एँठदार छोटी-छोटी मूँछें, बाँकापन ला रही थीं। उसकी चाल में मस्ती थी। जेल के भद्दे और बेमाप के कपड़ों में भी उसके शरीर की गठन छिपती नही थी। आधी बाँह की कमीज मे उसकी मांसल और मछलीदार भुजाएँ बड़ी अच्छी लगती थी। व्यायाम के कारण सुगठित शरीर।

बार-बार कुदाली चलाने से भुजाओं की मास पेशियाँ फूल गई थी और साँस भरने के कारण छाती दो तीन इंच उभरी लगती थी। श्रम के कारण मस्तक पर कुछ पसीने की बूँदें आ गई थीं। जब सलीमा को मालूम हुआ कि कल वाला कैदी आज नहीं आया, तो उसे लगा जैसे उसका अपमान कर रहा है। वह कुछ झल्लाई-सी बाहर निकली, किन्तु दूर से मोहन के इस रूप को देख कर उसका क्रोध हवा हो गया। उसने अपने परिवार के पुरुषों को निकट से देखा था। दूर से पुरुषों को देखने का अवसर नही मिला। शेरवानी और सूट में उनके शरीर अच्छे लगते थे लेकिन कपड़े उतारने पर उनकी हड्डी-पसलियाँ और दुबले-पतले हाथ-पाँव कितने भद्दे लगते है। उसने सोचा, इस कैदी के पास कपड़े नही, फिर भी यह कितना सुन्दर है। मोहन अपने काम में लगा था। एक क्षण रुके बिना उसका हाथ चल रहा था, पसीना पोंछने का समय भी उसके पास नही था। सलीमा ने सोचा—कल मैंने इसे योंही काम-चोर कह दिया। इसमें कितनी फुर्ती है, फिर भी उसके चेहरे पर कितना भोलापन है, जैसे दुनिया की चालाकी और मक्कारी से इसका कोई ताल्लुक नही। वह ताकती रही। मोहन अपना काम करता रहा।

"कैदी, आज तू घर साफ करने नही आया?" लड़की ने उसके निकट जाकर प्रश्न किया। स्वर में तीखापन था, पर कल-जैसी नीरसता न थी।

"नही आया।"—मोहन ने कुदाली जमीन पर टेकी और सीधा-सा उत्तर दिया।

"नही आया, सो तो मै भी जानती हूँ, रे! जो नहीं जानती वह जानना चाहती हूँ। तू क्यो नही आया?"

मैंने कह तो दिया—"नही आया। दूसरा साथी चला गया है। मुझे झाड़ना नही आता।"

"तुझे नहीं आता इसीलिए सिखाना चाहती हूँ। तेरे जैसे कामचोर को योंही कैसे छोड़ा जा सकता है?"

"मै यहाँ आराम तो नही कर रहा हूँ। आप लोगों को काम से मतलब है या काम सिखाने का स्कूल खोलना है।" मोहन ने झुँझला कर प्रश्न किया।

"स्कूल नही खोलना है, किन्तु तुझे झाड़ना जरूर सिखाऊँगी । आखिर तुम्हें किसी न किसी दिन यह काम करना ही है ।"

"किसी दिन नहीं करना है इसलिए आज सीखने की जरूरत नही । जिसे करना होगा वह अपने आप कही सीख रही होगी । मुझे दोपहर तक यह पौधा लगाना है । काम करने दीजिए ।"—और वह कुदाली चलाने लगा ।

सलीमा को कुछ सूझा नही । उसकी इच्छा हुई कैदी के हाथ से कुदाली छीन लूँ और कहूँ, चल बडा आया काम करने वाला । लेकिन वह अपनी इच्छा कार्य रूप मे परिणत न कर सकी । वह वहाँ से चली गई । आज इच्छा रहते हुए भी वह कल की तरह मोहन पर अधिकार नही जता सकी । उसे लगा कल उसने कैदो को जो थप्पड लगाया था, वह लौट कर जैसे उसी के मुँह पर पडा है । कैदी साफ-साफ कह देता कि कल तुमने मेरा अपमान किया, इसलिए मैं अन्दर काम करने नही आऊँगा, तुमसे बात नही करूँगा; तो शायद उसे इतना दुःख अनुभव नही होता । बिना उसकी ओर दृष्टि डाले, उसने काम का बहाना करके उसे हट जाने का आदेश इस तरह दिया कि कही कोई चिह्न दिखाई न देते हुए भी हृदय मे बड़ा घाव बन गया । वह कैदी आज इतना अधिकार युक्त क्यो हो गया है और उसमें इतनी निर्बलता कहाँ से आ गई ?

वह उद्विग्नता से दालान में जाकर इधर-उधर घूमने लगी । इच्छा हुई, बेत लेकर वह चुपचाप उसके पास जाय और पीछे से दो-तीन प्रहार करके पूछे, तुम्हारे पास बात करने की फुर्सत नही है, क्यो ? लेकिन दूसरे क्षण उसे लगा, यह कैदी दूसरे कैदियों से कितना भिन्न है । दूसरे कामचोर और बातूनी है । और यह फुर्तीला, मेहनती और विनम्र ! दूसरे कैदियो की तरह इसे भी मैंने कल थप्पड़ जमा दिया । यह अच्छा नही हुआ । मुझे चल कर उससे माफी माँगनी चाहिए । किन्तु तत्काल उसमे खानबहादुर का पितृत्व हुँकार उठा—छिः, मुझे माफी क्यों माँगनी चाहिए ? मै और कैदी से माफी माँगूँ ? मुझे उसकी अकड़ निकालनी ही होगी । वह इधर-उधर चक्कर लगा रही थी और उसका मन भी विचार-धारा के दोनों छोरों को बारी-बारी से छू रहा था । इस स्थिति में माँ ने बेटी को पुकारा—

"सलीमा, जरा इधर आ, देख, रात का साग और कुछ पराठे बचे है। कैदियों को बाँट दे। साथ में थोडा मीठा भी दे देना। बेचारे खा लेगें।"

कैदियों को जब बासी और बचा-खुचा भोजन मिला तो मारे खुशी के उछलने लगे। उन्हे इस तरह नमक, मिर्च और मसालेदार साग कहाँ मिलता है? सलीमा ने तय किया मोहन को नही दूँगी। वह भी क्या जानेगा। लेकिन फिर विचार आया न देना ठीक नही। जब मै खाने को दूँगी तभी उसे पता चलेगा, मुझमें और उसमे क्या अन्तर है? मै क्या कर सकती हूँ? थप्पड़ मार सकती हूँ तो मिठाई भी खिला सकती हूँ। उसकी उदासी दूर हो गई। वह उत्सुकता से मोहन के पास गई। वह उसी तरह मिट्टी खोद रहा था।

"कैदी, इधर आना।"—सलीमा ने उसे दूर से बुलाया।

"जी, मेरा काम अभी ख़तम नही हुआ।"—बिना सिर उठाये मोहन ने उत्तर दिया।

"अरे, काम छोड़कर जल्दी आ। तूने आज उठते ही अच्छे का मुँह-माथा देखा है। ले, सुबह-सुबह इतना बढिया खाना मिल गया।"

मोहन ने देखा लडकी के हाथ में थाली है और थाली में काफी भोजन है। नम्रता-पूर्वक कहा—"आप बुरा न माने, मै कैदी हूँ। मुझे जेल के नियमों का पालन करना चाहिए। जेल से बाहर की कोई चीज हमें नही खानी चाहिए। दारोगाजी की इजाजत मिलने पर ही हम ऐसा कर सकते है।"

"दारोगा का हुकुम क्या खानबहादुर की बेटी से भी बढ़कर है?"—भौहें तान कर लड़की ने गुस्से से कहा।

"हाँ, बड़ा तो है। आप सुपरिण्टेण्डेण्ट की बेटी है, लेकिन बेटी होने से तो दारोगाजी की अफसर नही बन सकती।"

"पाजी कही का!"—मारे क्रोध के सलीमा ने जमीन पर पाँव पटका। मै समझ गई—हम लोग मुसलमान है इसी लिए तू यह खाना वापिस कर रहा है न?"

"नही बीबीजी, यह बात नही है। जेल में आने के बाद कोई जात-पाँत बाकी बचती है! घर की मान-मर्यादा सब जेल के फाटक पर रह जाती

है। हम सब कैदी हैं, न कोई हिन्दू, न कोई मुसलमान ! अन्दर हम सब एक साथ खाते हैं, एक जगह उठते-बैठते हैं !"

"तू खाना नही चाहता ?"

"नही।"

सलीमा चली गई।

× × ×

कुछ दिन और बीत गए। अब चाहने पर भी सलीमा किसी कैदी पर क्रोध नहीं कर सकती। वह मन ही मन बड़बडाती है, अपने मन की सारी भड़ाँस किसी पर निकालना चाहती है, किन्तु निकाल नही पाती। उसमें जो ज्वाला थी, वह जैसे अन्दर ही अन्दर उसे दग्ध किये दे रही है, किन्तु विवशता है, वह उस उष्णता से किसी दूसरे को उत्तप्त नही कर सकती। वह अपने मन से इतनी निर्बल कभी नही थी, किन्तु आज न चाहने पर भी न जाने किस अदृश्य शक्ति ने उसे निर्बल बना दिया था।

उस दिन शाम को जोर की वर्षा हुई थी। लौटते-लौटते कैदी भीग गये। समय पर बैरक बन्द हो गये। कैदी अपने कपड़े कहाँ सुखाये ? सुबह उन गीले कपड़ों मे भीनी-भीनी दुर्गन्ध आने लगी थी, किन्तु कैदी उन्ही कपड़ो को पहिन कर काम करने गये। मोहन की तबीयत रात से खराब थी, अब उसका माथा और भी भारी हो गया। वह यदि चाहता तो उसके हिस्से का काम साथी कर डालते, किन्तु उसने उनका आग्रह नही माना। काम खत्म करके वह एक कोने मे पड़ गया।

सलीमा कुछ दिनों से अनुभव कर रही थी, उसके मन में एक दबी हुई लालसा है, जो मोहन के आगमन की प्रतीक्षा किया चाहती है। इस लालसा का पता चलते ही वह मन ही मन मोहन पर खीजती और कभी अपने ऊपर ही क्रोध करने लगती। इस क्रोध और खिंजलाहट की जड़ में जो भाव काम कर रहा था, वह उस भाव से अपरिचित थी। जब उसे मोहन घर में काम करता नहीं दिखाई दिया तो वह इधर-उधर उसे खोजने लगी, लेकिन इस तरह जैसे वह अपने आपको यह ज्ञान नही कराना चाहती कि किसी को देख रही है, यों ही

यदि कोई मिल जाये तो देखने में कोई आपत्ति नही। मोहन को चुपचाप लेटा हुआ देख कर उसे कुछ आश्चर्य-सा हुआ। वह बँगले में आने के बाद लौटने तक काम में लगा रहता था। सलीमा पास गई। मोहन की आँखे बन्द थीं और उन बन्द आँखो की पलकों से जैसे करुणा या बेबसी छलक रही हो। उस का मुर्झाया-सा मुँह और शरीर देख कर सलीमा के आश्चर्य का स्थान लिया सहानुभूति ने।

"कैदी सो क्यों रहा है?"

कैदी ने उत्तर नही दिया।

"सुनेगा नही, कैदी?"—सलीमा को शरारत सूझी। उसने एक कंकर फेंका। मोहन ने आँखे खोली, देखा, सामने सलीमा खड़ी है। उसने अनुभव किया, यदि उसके मुँह से एक शब्द भी निकला तो उसके आँसुओ का बाँध टूट जायेगा। आज इतना परवश, असहाय और निर्बल था वह! सलीमा ने उसकी डबडबाई हुई आँखों में वेदना, घृणा, ग्लानि, लज्जा, विवशता या उपेक्षा में से न जाने कौन-सा भाव देखा। कैदी से उत्तर न पाकर उसे क्रोध नही आया।

"कैदी आज इतना उदास क्यों है?"

"योंही," शक्ति समेट कर मोहन ने दो शब्द कहे।

"तबीयत खराब है?"

"कुछ ऐसा ही लगता है।"

"फिर काम पर क्यो आया? आज आराम करता।"

"जेल और आराम का कोई ताल्लुक भी है, बीबीजी?"—इस बार वह अपने आँसुओ को रोक नही सका।

"कुछ खाया नही?"

"भूक ही नही थी।"

"मैं कुछ दूध और फल लाऊँ?"

"नही। आपका यह पूछना ही मेरे लिए बहुत है।"

"पूछना ही बहुत नही है, रे। आज तू ना नहीं कर सकेगा।"

"एक कैदी पर आप को इतनी दया क्यों आती है, बीबीजी ?"

"क्यों आती है, इसे तू क्या समझेगा, पागल ! तुझ जैसा-गॅवार समझना चाहे तब भी नही समझ सकता।"

"अगर आप समझायेगी तो क्यो नही समझूंगा ?"

"अच्छा, समझाती हूँ। बता तो तुझे कितनी सजा हुई है ?"

"छः महीने की।"

"बस छः महीने की ही ! इसके बाद तो तू कैदी न रहेगा।"

"नही, फिर मै ऐसा काम ही नही करूँगा।"

"उसके बाद तुझसे कोई झाड़ तो नही दिलवायेगा ?"

"नही।" मोहन के माथे का भारीपन दूर हो गया। लेकिन वह उसी तरह लेटा रहा।

"तू जानता है, मुझे कितनी सजा मिली है ?"

"आपको कौन सज़ा देगा ? बीबीजी ! कोई जरा-सी भी हुकुम-अदूली करे तो आपका थप्पड़ उसका मुँह लाल कर देता है।"

सलीमा को उस दिन की स्मृति हो आई। शर्म के कारण उसका मुँह नीचा हो गया। वह नम्रता से बोली—"यह सब कुछ तो अपने कैदीपन को छिपाने के लिए कर लेती हूँ, पागल ! हम औरतें खुदा के घर से ही उम्र-कैद लिखाकर लाती हैं। न जाने यह किस गुनाह की सजा है। तुम्हारे पाँव मे लोहे की बेड़ियाँ हैं, इन बेड़ियो को देख कर तुम्हे धोखा नही होता। तुम हर वक्त जानते हो, मै कैदी हूँ। मेरी आजादी छिन चुकी है। तुम मेरे जिस्म पर, हर औरत की देह पर जो हीरे-मोती, सोने-चाँदी, राँगे-रूपे का जेवर देखते हो, वह क्या है ? वे औरत की हथकड़ी-बेड़ी ही तो हैं। वह कितनी भोली है, यह सब जानते हुए भी अपने आपको कितना धोखा देती है, इन बेड़ियों को वह समझती है अपना जेवर, अपनी खुशकिस्मती ! मर्द एक सोने की अँगूठी बनवा कर औरत की अंगुली में पहिना दे तो उसको खुशी का ठिकाना नही रहता। काश, वह समझ पाती, इन चीजों के लिए उसे कितनी बड़ी कुरबानी देनी पड़ती है ! रेशमी साड़ी या बनारसी साड़ी पहिनकर हम अपने आपको जन्नत की हूर

माननें लगती हैं, लेकिन हमारे चारों तरफ दोज़ख़ की आग जलती रहती है। थोड़ी देर मर्दों के साथ मोटर में इधर-उधर सैर कर आई तो जिन्दगी की बहुत बड़ी तमन्ना पूरी हो गई। लेकिन कैदी, तुम यकीन रखो, जिस घर का आँगन जितना ही बड़ा है, जिस घर की चार-दीवारी जितनी लम्बी-चौड़ी है, उस घर की औरत के लिए उतना ही बड़ा जेलखाना होता है। इन बँगलों मे रहनेवाली औरतों से वे औरतें लाख दर्जे अच्छी है, जो खुली हवा में मेहनत और मजदूरी करती है, और जिसे उसका मर्द शुब्हे की नज़र से नहीं देखता, घरवाले जिस की रखवाली के लिए पहरेदार का काम नही करते।"

सलीमा का स्वर क्रमशः तेज होता गया। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी दूसरे से बात न करके अपने आपसे बातें कर रही थी।

"बीबी, अभी तुम्हारी शादी नही हुई। क्या लड़की के लिए माँ-बाप का घर भी कैदखाना होता है ?"

"तेरह-चौदह साल की उम्र तक शायद न हो, लेकिन इसके बाद तो माँ-बाप का घर भी जेलखाना बन जाता है। मै तुम्हे अपनी जिन्दगी की एक कहानी सुनाती हूँ। हमारे अब्बाजान के एक दोस्त आसाम में रहते है। एक बार अब्बा इनसे मिलने गये। मै भी साथ थी। उस समय मै बहुत छोटी थी, लेकिन मुझे हर चीज याद है। अब्बाजान के दोस्त हमें घने जंगल मे सैर कराने ले गये। वहाँ नये हाथियों को पकड़ कर पालतू बनाया जाता था। वहाँ के लोगों ने बताया, पन्द्रह-बीस साल पहिले एक गढ़ा खोदा जाता था और उसे घास-फूस से ढक दिया जाता। जंगली हाथी धोखे से वहाँ आ, गढ़े में गिर जाता। किन्तु अब तरीका बदल गया। अब झाड़ों मे रस्सियों का जाल इस तरह डाला जाता है कि जंगली हाथी वहाँ फँस जाता है। फिर उसके पास पालतू हाथी भेजा जाता है। पालतू हाथी उसके बदन पर इन्सान के बड़प्पन का असर डालता है। कभी-कभी जंगली हाथी अपनी आज़ादी की बेहतरी जताने के लिए पालतू हाथी से मुकाबिला करता है, लेकिन दो-चार दिन में ही उसका जोश ठंडा हो जाता है। इस बीच में दस-बीस आदमी वहाँ जाकर जोर-जोर से शोर मचाते है। जंगली हाथी घुटने टेक देता है और फिर मेमने की तरह छोटे-से इन्सान की खिदमत करने

लगता है। यह सुन कर उस वक्त सिर्फ दिल-बहलाई हुई थी, लेकिन आज वह सारा नजारा आँखो के आगे आ खड़ा होता है। मै उस जंगली हाथी और अपनी हालत में कोई फर्क नही पाती। हरेक औरत की ज़िन्दगी में यही नाटक रचा जाता है। आज जो लड़की है वह कल औरत बनेगी, जो दुनिया को अपनी नज़रो से नही देख सकती, बल्कि खुद अपने आपको भी, अपनी हर हरकत को भी वह आदमी की नजरो से देखने के लिए मजबूर की जाती है। और यह सब होता है उन पालतू औरतों के जरिये जो पहिले ही अपना सब कुछ मर्द को दे चुकी होती है, कि उनका अपना कुछ नही होता और वे कहलाने को माँ, भाभी, बहिन या चाची-भाभी कहलाती है, लेकिन हरेक की जिन्दगी का मकसद यही है। वे खुद गुलामी मे है और किसी औरत को वे आजादी की साँस नही लेने देंगी। दूसरे मर्द, वह मर्द जो उसका भाई होता है, बाप या चाचा होता है, अपने शोर-गुल से अपनी चीख-पुकार से औरत पर चाहे वह पाँच साल की लड़की ही क्यो न हो—असर डालता है, मर्द उस पर हुकूमत करने के लिए पैदा हुआ है।"—इतना कहने के बाद उसे क्षण भर के लिए प्रतीत हुआ, वह किस के सामने बोल रही है! एक अनपढ़ कैदी के सामने! इस विचार से वह कुछ ठिठक-सी गई। उसने श्रोता से प्रश्न कया—"लेकिन इन सव बातों को तू क्या जानेगा, कैदी?"

"जानूंगा क्यों नहीं, बीबी! क्या मेरे माँ नही है, बहनें नहीं है? मै ने क्या अड़ोस-पड़ोस में औरतों की हालत नही देखी है? कहती जाओ, मै अच्छी तरह समझता हूँ तुम्हारी बातों को।"

"अगर समझता है तो इतना और कहे देती हूँ। हम ससुराल में पहुँच कर इतना तो समझने लगती हैं कि इस कैदखाने की दीवारें हमारी अपनी मेहनत से, हमारे अपने बलबूते पर बनी है। वहाँ जी बहलाव के लिए कुछ खिलौने होते हैं—बेटा-बेटी, खुद खाविन्द, ननद, सास ससुर..."

"मै जब से यहाँ काम करने आता हूँ, सोचने लगा, बड़े घर की औरतें कितनी सुखी है। इतना बड़ा घर, इतने नौकर, हाथ से तिनका भी नहीं तोड़ना

धड़ता ।"—मोहन ने सलीमा की बात काट कर कहा । वह उठ कर बैठ गया था । सलीमा ने उसके नेत्रो मे सहानुभूति की झलक देखी ।

"लेकिन यह सब दिखावा है, कैदी ! उस जेलखाने की तकलीफ को भुलाने के लिए औरत खुद इन चीज़ों मे दिलचस्पी लेती है । नौकर-चाकरों पर हुकूमत करके वह अपने दिल को खुश कर लेती है, कि वह भी किसी पर हुकूमत करती है । उसका बेकार रहना तो और ज्यादा तकलीफदेह चीज़ है । तुम किसी कोठरी में बन्द किये गये हो ?"

"नही ।"

"तब तू बडे घरों की औरतों की तकलीफ ठीक-ठीक नही समझ सकेगा । जिस कैदी को काम मिलता है, वह कैदी अपनी सजा आसानी से काट लेता है, लेकिन जिस कैदी को कोठरी में बन्द कर देते है वह अपनी सजा भुगतने के इस जरिये को भी खो देता है । हमारे लिए घर मे काम नही होता, इसी लिए हम नये काम निकालती है और दिन भर की बेकारी दिमाग को परेशान रखती है । अच्छा जाने दे इन बातों को, मै तुमसे सवाल करूँ तो ठीक-ठीक जवाब दोगे ?"

"हाँ ।"

"उस जवाब के पीछे बहुत बड़ी जवाबदारी है ।"

"रहने दीजिए ।"

"तुम्हें यहाँ और कितने दिन रहना है ?"

"सजा खत्म होने को है । पन्द्रह दिन होंगे ।"

"तू जेल से अकेला ही जायगा या किसी दूसरे कैदी की मदद भी करेगा ?"

"एक कैदी दूसरे कैदी की क्या मदद करेगा, बीबी जी ?"

इस बार सलीमा जरा शर्मा गई । उसके गालों पर कुछ ललाई आ गई । जमीन की तरफ देखते हुए वह बोली—"चारदीवारी से बाहर निकलने पर भी क्या तुम कैदी ही रहोगे ? इतने हट्टे-कट्टे रहकर किसी की मदद नहीं कर सकोगे ?"

"आपकी बाते मुझे समझ में नही आ रही हैं, आप साफ कहिए न ?"

"अभी समझने की जरूरत भी नही। वक्त आने पर समझ जाओगे। लेकिन मालूम होता है, तुम्हे कुछ तो समझाना ही पड़ेगा।—और कोई दूसरा कैदी नहीं है, जिसे तेरी मदद की ज़रूरत है। मै तेरे साथ चलूँगी। ले चलेगा न ?"

"यह कैसा मजाक कर रही है, बीबीजी ! मै गरीब आदमी, अपना ही पेट मुश्किल से भर पाता हूँ, आपको क्या खिलाऊँगा ?"

"क्या मै पेट भरने के लिए तेरे साथ चल रही हूँ ? पेट के लिए यहीं क्या कम है ? अगर तू अपनी कमाई खिलाएगा तो हुकूमत भी करेगा ! मै उस हुकूमत से बचना चाहती हूँ।"

"तब मेरे साथ आपकी गुजर-बसर कैसे होगी ?"

"कैसे होगी, यह अभी नही मालूम। किसी न किसी तरह हो जायेगी, इतना भरोसा है। अगर कोई दूसरा काम न मिला तो मेहनत-मजूरी मे भी तुमसे पीछे नही रहूँगी। यह न समझो, मै बँगले मे रह कर नाकारा हो गई हूँ। कुछ न होगा, पहाड़ पर पत्थर फोडने चले जायेगे। मै दिन भर किसी चट्टान की छाया में हथौडी से पत्थर फोडा करूँगी और तू टोकरे मे भर-भर कर मोटर तक पहुँचा आना, पेट भरने को मिल जायगा।"

सलीमा का मुँह विश्वास से दमकने लगा।

कैदी खिल-खिला कर हँस दिया। हँसते-हँसते ही उसने सवाल किया—"पत्थर फोड़ने वालो मे आपको कोई रहने देगा ?"

"इसकी फिक्र तुझे क्यो है, कैदी ? आखिर खानबहादुर की बेटी हूँ। कोई आँख उठाकर देख तो जाय, आँख ही निकाल लूँगी मुर्दार की। और फिर तुम्हारे ये लम्बे-लम्बे हाथ किस दिन काम आयेगे ?"

"हाँ, मेरे रहते किसकी सामत आई है। मै अकेला दस के लिए भारी हूँ।" उसमें कई दिन का सोया हुआ पौरुष जाग गया। कैदी की छाती तन गई। ज़रा छेड़ने के लिए उसने व्यंग कसा—"लेकिन वहाँ घर साफ करने के लिए कोई कैदी तो नही रहेगा ?"

"देवता बना कर तेरी पूजा थोड़े ही करूँगी। तू कैदी न रहेगा तो क्या

राजा बन जायगा ? आखिर शुरू दिन से तुझे इतना सिखाया-पढाया है, क्या वह बेकार ही जायगा ? अच्छा रहने दे इन बातो को, इसके लिए इतनी लम्बी उम्र बाकी है । मै भूल गई थी । तुझे कुछ खिलाना है न ?"

"नही ।"

"नही क्यो ? कैदी ही कैदी की मदद न करेगा तो दूसरा कौन पूछने चला है । आज तेरी ना नही चलेगी ।"

और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये सलीमा तेजी से घर मे चली गई । लगभग आधा सेर दूध, एक अनार और दो तीन सन्तरों के साथ वह वापिस आई । दूध देकर फल छीलने लगी । मोहन के ना-ना करने पर भी सलीमा "नखरे मत दिखा, खा ले" कह कर खिलाती गई । सुन्दर अँगुलियो का स्पर्श पाकर उन फलों में कितना माधुर्य आ गया था ! वह मुग्ध नेत्रों से सलीमा की तरफ टकटकी लगाये देख रहा था । और सलीमा आँखे झुकाये काम मे लगी थी ।

× × ×

"यह तूने अच्छा नही किया, मोहन ! तू यह काम करेगा, इसकी मुझे उम्मीद नही थी । जा अभी लौटा आ इसे ।"

"अब ले आया हूँ तो रखलो न, सलीमा ! आइन्दा न करने का वायदा करता हूँ ।"

"कोरे वायदे से काम नही चलने का । मै पूछती हूँ, मेरे रहत आखिर तुम्हें इतनी हिम्मत कैसे हुई ? क्या एक बार की जेल से तेरा पेट नही भरा ? मै समझती थी, तुमने जेल से सबक लिया होगा, मेरा लिहाज रखोगे, पुरानी आदत भूल जाओगे । क्या अब मै वही हूँ जो तबीयत सुस्त होने पर फल खिलाऊँगी ? पहले ही तेरा नाम नम्बरी लोगो मे है ।"

"इसके सिवाय कोई दूसरा चारा भी तो नही था, सलीमा ! तुम्हारा नेकलेस बेचकर जितने रुपए लाया था वे खत्म हो रहे हैं । तुम्हे नया जेवर पहनाने से रहा । तुम्हारे गहनों पर मेरा क्या हक है ? इतनी बेगैरती मुझमें नही है कि घर मे बैठा-बैठा मै तुम्हारा पैसा खाऊँ ।"

"फिर वही पागलों-जैसी बातें करने लगा, कैदी ! मै क्या तुझसे जुदा

हूँ ? जब मै खुद तेरी हो गई, तो जेवर कहाँ बचे रह गये ? मै खुद कोशिश कर रही हूँ, दरख्वास्त गई है । दस-पाँच दिन मे किसी न किसी लडकियो के स्कूल में जगह मिल जायगी । फिर इस वक्त अपने पास इतना है कि हम दोनो पाँच साल तक घर बैठे खा सकते है ।"

"लेकिन मुश्किल मेरी है । घर मे बैठ कर खाया नही जाता और कही काम नही मिलता ! लोग कहते हैं कि एक बार का सजायाफ्ता हैं । पुलिस के रजिस्टर मे नाम दर्ज है, तेरा क्या भरोसा । तुम्ही बताओ इन लोगों को कैसे इत्मिनान कराऊँ ? आज जिस सेठ के यहाँ गया था, उसने मुझसे यही सवाल किया । मारे गुस्से के मेरे तन-बदन में आग लग गई । सोचा, इसे तो भरोसा कराना ही होगा। थोड़ी दूर पर ललाइन अपने बच्चे को खिला रही थी । मैंने कहा, ललाइन, बच्चा तो एक ही है, कितना खूबसूरत, कितना सुशील ! सेठानी यह सुनते ही मारे खुशी के फूल उठी ! दस-पाँच मिनट मैंने बच्चे को खिलाया । आले मे सेठानी का यह कंगन रखा था, आँख बचा कर मैंने उठा ही तो लिया । अपने को रोक न सका । इन कगन से चार-छः महीने का काम चल जायगा । राम ने चाहा तो तब तक कोई काम भी मिल जायगा । आखिर पेट तो भरना ही है ।"

"भाड़ मे जाय ऐसा पेट ! इससे अच्छा यह है कि हम फाकाकशी करके अपनी जान दे दें । पराई दौलत पर तुम्हारा मन चला ही कैसे ? तुम्हारे इस काम से मै मारे शर्म के ज़मीन मे गड़ी जा रही हूँ । मुट्ठी भर चने खाकर पानी पी लूँगी, मगर हलवा-पूरी नही खाऊँगी । जाओ, उल्टे पाँवों जाओ, जिस का है लौटा आओ और आइन्दा चोरी न करने की कसम खाओ ।"

"आइन्दा के लिए मै कसम खाने को तैयार हूँ । अब तो ले आया हूँ । मुझसे लौटाया नही जायगा । वह समझेगा मै डर गया हूँ ।"

"वह कुछ क्यों न समझे, हमारा दिल पाक होना चाहिए ! जब गल्ती हो गई है, तो किसी के डर से उस गल्ती का न सुधारना अक्लमन्दी नहीं है । मैं चोर बनने या चोर के साथ रहने के बजाय अपने हाथों अपना गला घोंट कर मर जाऊँगी ।"

मोहन कंगन लेकर चला गया।

वह सजा खत्म करके घर आ गया था। सलीमा ने उससे पूरा पता ले लिया था। तीन-चार दिन बाद, प्रातः काल उसने देखा, घर के सामने टाँगा खड़ा है और उसमें से सलीमा उतर रही है।

मुहल्ले के लोगो मे चर्चा हुई। किसी-किसी ने मुँह पर भी खरी-खोटी सुनाई। तरह-तरह की कहानियाँ घड़ी गई, किन्तु सच्ची कहानी किसी को मालूम न थी। मोहन और सलीमा को मुहल्ले की चर्चा और बदनामी से कोई वास्ता न था। सलीमा को इस छोटे-से घर मे कोई कमी अनुभव नही हुई। ये दो महीने कितनी जल्दी गुज़र गये। ससार मे जैसे वे दो ही प्राणी थे और जैसे इस पृथ्वी पर कोई तीसरा प्राणी न हो। दोनों के पैर ज़मीन पर नही टिकते थे।

मोहन भलमंसी से कगन लौटाने गया तो हवन करते हाथ जला। सेठ जी ने कंगन हाथ मे लेकर कहा—"वाह भाई, कलियुग मे तुम्हारे जैसे ईमानदार कम ही होगे। कुछ भी कहो, तुम जैसे धर्मात्माओ के सत पर ही तो धरती टिकी हुई है। इस तरह भला कौन लौटाता है। बड़े अच्छे आदमी हो। लो कुछ जल-पान कर लो।"

बोलते समय सेठजी के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान थी। और उस मुस्कान के पीछे छिपी हुई थी उनकी क्रूरता, और बदले की भावना! किन्तु प्रशंसा सुनने के बाद मोहन इतना खुश हो गया था कि उसकी दृष्टि उस तरफ नही गई।

वह सेठ जी का आतिथ्य स्वीकार करने बैठा ही था कि सूचना पाकर थाने-दार वहाँ आया और मोहन को हथकड़ी पहना हवालात ले गया।

सलीमा ने सुना तो वह अचम्भे में रह गई। उसने सोचा, जब सेठ का माल सेठ को मिल गया तो पुलिस कौन होती है जो मोहन को गिरफ्तार करे? सेठ का दिल कितना सख्त होगा? क्या ऐसा हो सकता है?

वह खुद थानेदार के पास गई, उसने सच-सच पूरा हाल कह सुनाया। इस पर भी वह न पसीजा तो उसने मिन्नतें की। मोहन का छूटना तो दूर, थानेदार

सलीमा से ही उल्टे-सीधे सवाल करने लगा। उसकी ऑखो मे क्रूरता थी, कि देखकर सलीमा सिहर उठी।

एक घण्टे मे ही दुनिया पूरी तरह बदल चुकी थी। उसका स्वप्न टूट चुका था। जिस हिम्मत के साथ वह घर से चली थी, वह न जाने कहाँ गायब हो गई। वह अपना व्यक्तित्व सुरक्षित रखना चाहती थी, उसे अपने ऊपर गर्व था, उसकी दृष्टि मे पुरुष का कोई महत्व नही था। उसने अपने नारित्व और नारी की आकाक्षा का पोषण किया था। किन्तु सहसा उसे एक कमी अनुभव हुई। ऐसी कमी जिसकी खोल में उसका सब कुछ समा गया। उसकी आकाक्षा चकना-चूर हो गई, वह स्वय मिटी जा रही थी।

मुहल्ले के छैल-छबीलो ने उसे घेर लिया था। किसी ने दरवाजे पर धरना दिया, किसी ने चबूतरे पर धूनी रमाई। तरह-तरह के सवाल होने लगे। हमदर्द लोगो की कमी नही थी, लेकिन सलीमा के दर्द के बजाय, उन लोगो का अपना दर्द ही काफी था। यह एक नई दुनिया थी। कल्पना सुन्दर और मोहक होती है और यथार्थ ठोस और असुन्दर !

और सलीमा ने अनुभव किया, हमारे समाज मे पुरुष का एक निश्चित और अनिश्चित मूल्य है, किन्तु नारी का कोई मूल्य नही, वह शून्य है। हॉ पुरुष की छत्र-छाया मे ही उसका मनमाना मूल्य लगाय्या जाता है और वह अपने मन मे ही अपना बढ़ा-चढा कर मूल्य आँकती है। मनुष्य कैसा ही हो, उसकी छाया में नारी सुरक्षित है। उसका मन क्षोभ से भर गया। एक तरफ उसका व्यक्तित्व हुँकार उठता है, दूसरी तरफ उसकी निर्बलता उसके मन को झकझोरे दे रही थी। इसी समय थानेदार अपने फौज़ी जूतो की आवाज करता घर मे आया और बोल गया—"मै थोड़ी देर में लौटता हूँ, तुम्हारा बयान लेना है।"

सन्ध्या हो चुकी थी और रात्रि को कालिमा जैसे-जैसे गहरी होती जा रही थी उसके मन में वैसे-वैसे विषाद छा रहा था। वह ग्लानि मे डूब गई। इस सब पर आफत यह थी कि रात के वक्त थानेदार आयेगा, बयान लेने ! वह दिन में ही क्यों नही आया ? क्या पूछेगा ? इस समय याद आई उसे अपने माँ-बाप

की। ज्यादा सोचने-विचारने का समय नही था। वह अपना थोडा सा सामान लेकर स्टेशन पहुँची।

भोर होने से पहिले गाड़ी वहाँ पहुँच जाती थी और सलीमा के बाप का घर स्टेशन से ज्यादा दूर नही था। सलीमा जब घर मे पहुँची तो खान बहादुर साहब मसनद पर लेटे-लेटे नवाबी हुक्का गुड़-गुडा रहे थे। अपने सामने सलीमा को देख कर वह कुछ सहम-से गये, जैसे सपना देख रहे हों। फिर उन्हे लगा, यह सलीमा नही है, सलीमा मर गई है और यह चुडैल बनकर यहाँ आई है।

हाँ, उनके लिए सलीमा मर चुकी थी। जिस दिन सलीमा घर से गई, उस दिन उनमें काटो तो खून नहीं था। खबर दबा कर रखी गई। शाम को पत्नी को स्टेशन पर भेज दिया और दूसरे दिन वह घर लौट आई रोती-चिल्लाती। रिश्तेदारो और दोस्त-अहबाबो को सूचना दी गई, सलीमा अपने माँ के साथ ननिहाल जा रही थी, रास्ते में अचानक उसे हैजा हुआ और आधे घण्टे में वह खत्म हो गई। स्टेशन के कुलियों ने उसे वही दफना दिया। कुछ दिनों तक नाते-रिश्तेदार मातम-पुरसी के लिए आते रहे। झूठा नाटक खेलते-खेलते खान बहादुर को भी यकीन हो गया था, उनकी बेटी मर चुकी है। वे निश्चिन्तता से अपने काम में लग गये!

सलीमा को आज फिर अपने सामने देखकर वे अचम्भे मे रह गये। वे इस के लिए तैयार नही थे। इस घटना के आतंक का बोझ वे नही सँभाल सकें। उन्होंने कहा—"यहाँ आते वक्त क्या तुझे रास्ते में कोई कुआँ-बावडी नहीं मिली? और वे चुपके से उठ कर दूसरी तरफ चले गये।"

सलीमा उल्टे पाँव बँगले से निकली। अभी उजाला नही हुआ था। चलते-चलते उसने कहा—"अब्बा जान, घबराइए नही, आपको मेरे लिए किसी बावडी की तलाश नही करनी पड़ेगी।"

सलीमा अर्ध-मूर्च्छित-सी बाहर आई। उसे रास्ता नही सूझ रहा था। एक-दो बार ठोकर भी लगी, किन्तु उसकी तन्द्रा नहीं टूटी। उसके अन्त.करण ने निर्णय कर लिया था, किन्तु उसे स्वयं ज्ञात न हुआ, यह निर्णय क्या है और इसी लिए उसने निर्णय के औचित्य पर विचार नही किया।

बँगले से लग कर सड़क पर पीपल का छोटा पेड़ था। पीपल के नीचे उसे शीतलता अनुभव हुई। वह वही रुक गई। उसने अपने बक्स से साड़ी निकाली। एक कागज़ पर लिखा—"मेरा सामान मेरे बाप...खान बहादुर को दे दिया जाय। मेरी मौत सिर्फ मेरी अपनी बदकिस्मती की वजह से हो रही है।" कागज को ट्रक के कुन्दे में अटका कर वह बॅगले के फाटक की दीवार पर चढ़ी। एक शाख पर उसने साड़ी अटकाई और फन्दा बना कर वह स्वयं उस पर झूल गई !

× × ×

खान बहादुर के देखने से पहिले ही पुलिस वहाँ पहुँच गई थी। चिट्ठी पढ़ने पर खान बहादुर को बुलाया गया।

खान बहादुर ने जवाब दिया—"मै इसे नही पहिचानता यह, मेरी बेटी नही है।"

और खान बहादुर उस लाश की तरफ ऑख उठाकर भी नही देख सके।

हॉ, वह उनकी बेटी नही थी ! उनकी बेटी सलीमा तो दो महीने पहिले ही गुज़र चुकी थी।

हत्या

मेरे अन्तराल मे यह कैसा विस्फोट हो गया कि कही कोई स्थान, कही कोई अवरुद्धता शेष नही रह गई ! पलक मारते-मारते समूची सृष्टि विलीन हो गई । सर्वत्र शून्य, शून्य-ही-शून्य दिखाई देता है । वह कौन-सा पदार्थ था जो अपनी व्यापकता से इस महाशून्य को आवृत किये हुए था ? जो था, वह अब चला कहाँ गया ? चारो ओर सॉय-सॉय ! संकीर्ण जेल की इस छोटी-सी कोठरी मे इतनी सामर्थ्य नही कि वह मेरे शरीर की तरह मेरे ममत्व को, मेरी आत्मा को चारों ओर से घेर कर घनीभूत अन्धकार का निर्माण कर सके ।

जेल की ये बड़ी-बडी दीवारें, ये बड़े-बड़े ताले, मोटे-मोटे सीखचे और ये हथकडी-बेड़ियाँ और ये विधि-विधान अपने में इतनी शक्ति नही रखते कि मुझ पर, जो वास्तव मे मेरा 'मम' है, अपना भार डाल सकें, उसे घेरकर कुचल सकें ।

मेरे चारो ओर लाख-लाख संस्करण करके प्रकट होने वाले किसके नेत्र है ये ? लाख-लाख होते हुए भी दो और दो होते हुए भी लाख-लाख ! इनमे एक घनिष्ठ परिचय, अनिवार्य आकर्षण क्यो है ? ये मुझे अपनी ओर क्यो खींच रहे हैं ? इन नेत्रो के साथ-साथ एक धुँधली-सी रेखा, अगणित रेखाओं का समूह अपने में छिपाये, मेरे मनश्चक्षुओं की असमर्थता के कारण प्रकट होकर भी छिप जाती है । यह रेखा-समूह मेरे दाएँ, बाएँ, सामने, जिधर दृष्टि जाती है, विस्तृत होता है, फैलता है, परिभ्रमण करता है, एकाकार होकर केन्द्रीभूत हो जाता है और फिर लुप्त हो जाता है । मेरा मन अपनी समग्र शक्ति लगाकर इन रेखाओ में समन्वय, सन्तुलन स्थापित कर पाता है, घण्टों में; और ये रेखाएँ एकत्र होकर भी बिखर जाती है । जैसे गुलदस्ता बनाने के लिए कोई फूलों को सँवारे और फूल अपने आप अथवा जरा-सा बहाना पाकर तितर-बितर हो जाएँ । माला सम्पूर्णता को पहुँचने और जरा-सा खिचाव पाकर धागा टूट जाए, फूल बिखर जाएँ ! क्या क्षण भर के लिए इन रेखाओं को एकत्र

करके मै उस समष्टि का अवलोकन कर सकूँगा, जो इस समय अतीन्द्रित लोक की वस्तु बन चुकी है ?

कुछ संकुचित-से, अर्थ-भरे ये वाचाल नेत्र ! हृदय की अनन्त आकाक्षाओं को अपने तिल मात्र के दृष्टि विन्दु में समेटकर मेरी ओर ताकने वाले ये नेत्र ? उस दिन ऐसे ही तो थे ये ! कितनी विवशता और असमर्थता है इन नेत्रो मे ! यदि वह आकृति प्रकट नही होती तो उसकी कृतियाँ मेरे सम्मुख क्यो प्रकट होती है ?

मै हत्यारा हूँ ! हत्या करने वाला हत्यारा होता है । मैने हत्या की है, इसलिए मै हत्यारा हूँ ।

हाथ भर के फासले से अपने दोनो हाथो मे दो सीखचो को पकड़कर बन्द कोठरी मे खड़ा-खडा शशाक सोच रहा है । उसके मस्तिष्क मे प्रश्नो की अटूट शृंखला चल रही है । बीच-बीच मे सिर उठाकर वह सामने की दीवार पर पुते हुए तारकोल की कालिमा को देखता है । कभी उसकी भुजाएँ तन जाती है, वह सारी शक्ति लगाकर सीखचो को अपनी ओर खीचता है और फिर अपनी निष्फलता से झुँझलाकर अपने बालों को पकड़कर गर्दन हिलाता है ।

घटना का पूरा चक्कर काटकर उसका मन फिर वही लौट आता है, जहाँ से उसने सोचना शुरू किया था । उत्तरी ध्रुव से बाहर निकालने के लिए प्रस्थान करने पर भी मनुष्य पृथ्वी के अन्दर ही घूमता हुआ एक दिन अकस्मात् अपने को उसी उत्तरी ध्रुव की बर्फीली हवा मे ठिठुरता हुआ पाएगा । उस घटना ने उसके मन को चारों ओर से कवच की तरह घेर लिया है, जिसमें से बाहर का कोई प्रभाव उसके हृदय तक नही पहुँच सकता। किन्तु उस कवच की जकड किसी प्रहार से कम दु:खद नही थी ।

शशांक गिनती के बाद जब रात में सो जाता तो रह-रहकर किसी के खाँसने की कर्कश ध्वनि सुनकर वह उठ बैठता और फिर सूनी दृष्टि से अपने चारों ओर फैले हुए अन्धकार को चीरकर कुछ देखने के लिए घण्टों व्याकुल बैठा रहता ।

वह, जो उसकी जीवन-सहचरी बनकर आई थी, उसके साथ चल नही सकी । साथ चलने के लिए उसने गति शेष नहीं रखी ।

उसका नाम था माया। माता-पिता की एकमात्र सन्तान। उसके बाह्य में कोई विशेष आकर्षण नही था। साँवला रंग। छोटे-छोटे नेत्र। न जाने उन छोटे-छोटे नेत्रों के किस कोने मे असीम भोलापन, असीम निश्छलता भरी थी। उसकी आकृति एक दर्पण के समान था, जिसमे उसका हृदय प्रति-बिम्बित होता था। और फिर भी ऐसा लगता था, उसमे कुछ है, जो गोपनीय है, अप्रकट है।

ससुराल आने के तीन-चार दिन बाद उसे ज्वर आया और उस ज्वर ने अन्त तक उसका साथ दिया। वह ज्वर उस समय अधिक चिन्ता का विषय बन गया जब कि कुछ दिनों बाद डाक्टरो ने उस ज्वर को क्षय की संज्ञा दी। अच्छे-से-अच्छा उपचार हुआ, सेनिटोरियम मे रखा गया, किन्तु क्षय जैसे अक्षयता का वरदान लेकर आयी थी।

माया के निकट संसार का कोई अस्तित्व नही था। संसार की यह अज्ञानता थी कि वह अपने निकट माया का अस्तित्व मानता था। वह पलंग पर लेटी-लेटी दिन भर सोचा करती। अधिकांश समय उसकी आँखें बन्द रहती। दूर से देखने पर प्रतीत होता, कोई ध्यानमग्ना योगिनी है। अनुमान नही लगाया जा सकता था कि वह कुछ सोच रही है, निद्राभिभूत है अथवा उसे किसी चिन्ता ने स्पर्श किया है।

उसका एक पृथक् संसार था, जिसमें अन्य व्यक्ति को प्रवेश करने का अधिकार नही था।

कभी उसमे परिवर्त्तन दिखाई देता, अकस्मात्, अकारण! वह खाट छोड़कर इधर-उधर टहलती, घण्टों धूप में बैठी रहती। साड़ी पर बेल-बूँटे निकालने बैठती तो थकने का नाम न लेती। सास कहती—"रहने दो, बेटी! तुम्हारी तबियत खराब है, बेटी! ज्यादा मेहनत न करो।"

वह चट से उत्तर देती—"नही, माता जी, मै अच्छी तो हूँ। आप लोग व्यर्थ ही चिन्ता करते है।"

उसने प्रत्येक उपचार को निर्विरोध ग्रहण किया था। समय पर अपने आप ओषधि ले लेती। घर का कोई बड़ा आदमी उसके सामने आता तो वह

विनम्र होकर अभिवादन करती। छोटे बच्चो के प्रणाम को मुस्कराकर स्वीकार करती। जब उससे स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्न होता तो वह उत्तर देती—आप लोग मुझे बीमार क्यो समझते है ? मुझे हुआ क्या है ?

घर के बच्चों-बडो को आदेश था, कोई माया के पास देर तक न ठहरे। माया इस आदेश और इस आदेश की आवश्यकता से परिचित थी। वह अवसर नही आने देती थी कि किसी को उसके पास जाने की आवश्यकता पडे।

और शशाङ्क चाहता था, वह अपनी पत्नी के पास बैठे, उससे क्षण भर के लिए भी दूर न हो। किन्तु घरवाले उसे वहाँ जाने नही देते थे। घरवालो की आँख बचाकर किसी तरह वह माया के पास पहुँचता तो वह उसे उल्टे पाँवो लौटने के लिए विवश करती। कहती—क्यो आए है आप यहाँ ? कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? और फिर मुसकराकर कहती, जाइए न ?

शशाङ्क उसकी मुसकान से मुग्ध हो जाता, किन्तु वह उसके आदेश को टाल नहीं सकता था।

अधिक सम्पर्क न रहने पर भी, खुलकर वार्त्तालाप न करने पर भी, शशाङ्क के जीवन का एकमात्र केन्द्र थी माया। माया के अतिरिक्त उसके लिए कुछ भी नही था। वह प्रतिभाशाली, शिक्षित युवक अपनी समस्त आकाक्षाओ को भूलकर स्वस्थ माया को कल्पना करता और कल्पना मे ही अपनी माया को लेकर नव-सृष्टि का निर्माण करता।

जाड़े के दिन थे, माया आँगन मे बैठी धूप सेवन कर रही थी। उसमे रक्त-मांस नाम मात्र को भी शेष नही थे। ऐसा लगता था, जैसे किसी ने ऊबड़-खाबड हड्डियो को एक चमड़े की चादर मे ढीला-ढाला बाँधकर रख दिया है। मुख पर वही चिरपरिचित भोलापन था। वही निश्छलता थी। मुख के आकर्षण मे विशेष अन्तर नही पडा था। शशाङ्क एक खम्भे के सहारे खड़ाखड़ा माया को निहार रहा था। एकाएक शशाङ्क की आँखो से अविरल धारा बह निकली।

माया ने उसकी ओर देखा तो वह अपनी निर्बलता भूल गई। उठकर शशाङ्क के पास आई। शशाङ्क का हाथ पकडकर वह उसे अपने कमरे मे ले गई। अपने आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए माया ने हँसकर कहा—"आप यह

क्या पागलपन कर रहे हैं ? पुरुष रोता है कभी ! मेरी आँखों मे भी कभी आपने आँसू देखें हैं ?"

किन्तु शशाङ्क के आँसू रुकते नही थे, वह अपना सिर नीचा किये बैठा था। उसकी आँखों से टप्-टप् आँसू गिर रहे थे।

माया ने उसका सिर अपनी गोद मे रख लिया। एक हाथ से शशाङ्क का सिर दबाते हुए दूसरे हाथ से उसे गुदगुदाकर उसने कहा—"हँसिए, आप हँसिए न ! अच्छा आप हँसेगे नही ? तो फिर माता जी को बुलाती हूँ मै !"

और माया स्वयं खिलखिलाकर हँस दी।

इस आग्रह मे शक्ति थी, जिसने शशाङ्क के आँसू रोक दिये। वह रुआँसे मुख से मुसकराने का प्रयत्न करने लगा।

माया ने मीठी ताडना के स्वर में कहा—"अब फिर कभी ऐसा न कीजिए।

यह कुछ क्षणों का साथ! शशाङ्क को प्रतीत हुआ, माया का सारा मौन, सारा रहस्य, सारा आवरण दूर हो गया है और वह निरावृत माया उसके हृदय मे घुलकर एकाकार हो रही है।

माया अधिक बीमार हो गई। अब उससे मिलने के लिए शशाङ्क को कोई नही रोकता। उसे मिलने के लिए अवसर दिये जाते थे।

माया का कमरा बदल दिया गया। वह कमरा शशाङ्क के कमरे के पास ही था।

वह रात ? वह रात क्या कभी भूली जा सकेगी ? दस-साढे दस बजे शशाङ्क को खाँसने की ध्वनि सुनाई दी। खाँसी शब्द से उस क्रिया को पूरी तरह व्यक्त नही किया जा सकता। खाँसी का ढेर था जो एकबारगी ही मुँह से निकल जाना चाहता था। खाँसी की एक अटूट शृंखला, जो आरम्भ हुई तो पूरे पन्द्रह मिनट पश्चात् विराम लेती। प्रति क्षण अनुभव होता, आगामी क्षण खाँसी रुक जाएगी और खाँसी के साथ ही हृदय की धड़कन भी। माया का बायाँ फेफड़ा अधिक व्याधि-ग्रस्त था। वह शय्या पर पड़ी-पड़ी हाँफ रही थी। उसकी साँस मे भयानक घरघराहट थी, रोमांचकारी गुञ्जन था।

शशाङ्क अनुभव करने लगा, वह पलँग पर नही है, कमरे में नही है, किसी

स्थूल वस्तु पर नही है । आकाश के किसी कोने में वह सिकुडा हुआ लटक रहा है । माया के कमरे मे जाने का उसे साहस नही होता था । आधी रात गये वह माया के कमरे मे गया और पलंग के एक कोने पर बैठ कर धीरे-धीरे माया का माथा दबाने लगा ।

माया न हिली न डुली । उसी तरह लेटी रही । उसके मुख पर मुसकान दौड़ गई । आँखे बन्द किये वह दिव्य आनन्द का अनुभव कर रही थी । तीन चार मिनिट बाद उसने अपने हाथ मे शशाङ्क का हाथ पकडा, कुछ दबाया और उसी तरह बिना आँखे खोले वह बोली—"आप ? आप आ गये यहाँ ? किस तरह पहुँचे यहाँ तक ? अच्छा किया—"

शशाङ्क स्तब्ध रह गया । वह कुछ सहमकर बोला—"माया, माया, क्या तुम कोई स्वप्न देख रही थी ? मै हूँ ! जरा आँखे तो खोलो !"

माया सन्न रह गई । उसकी मुसकान विलीन हो गई । उसने आँख खोल कर शशाङ्क की ओर देखा । उसकी दृष्टि स्थिर हो गई थी । शशाङ्क समझ नही सका कि इस दृष्टि में आश्चर्य है अथवा उत्सुकता ।

काँपते हुए स्वर मे माया ने कहा—आप है ? फिर कुछ हँसने का प्रयत्न करते हुए वह बोली—"इतनी रात गए आप यहाँ क्यो आए है ? आप अभी तक सोये नही !" अपनी बात समाप्त करके जैसे ही वह बाई करवट ले, उसके मुँह से वेदना भरी आह निकली । वह करवट न ले सकी । और फिर खाँसी क्षण भर के लिए नही रुकी ।

खाँसी रुकी तो शशाङ्क ने कहा—"माया, तुम जीवित कैसे हो ? इतनी भयङ्कर खाँसी !" स्वर मे सहानुभूति की अपेक्षा दया अधिक थी ।

अपनी खरखराती आवाज मे मधुरता लाने का प्रयास करते हुए माया ने कहा—"आज की रात तो बहुत आराम से कट रही है । कोई विशेष बात नही है, अब आप जाइए ।"

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था ।

शशाङ्क स्तब्ध बैठा रहा । उठा नही, उसी तरह सहलाता रहा ।

दूसरे दिन रात मे , उसी समय वह माया के कमरे मे पहुँचा । माया लेटी

हुई छत की ओर ताक रही थी। चुपचाप। शशाङ्क के पहुँचते ही वह कुछ मुसकाई और बोली—"आइए, बैठिए !"

शशाङ्क के लिए यह स्वागत अनपेक्षित था। वह बैठ गया। उसके केशो पर हाथ फेरने लगा।

माया की आकृति मे गम्भीरता छा गई। उसने गम्भीरता के साथ कहा—"आपका क्या मत है, स्त्रियो मे आत्मा होती है या नही ?"

"होती क्यों नही ? स्त्री-पुरुष, गाय-बैल ये तो शरीर के भेद है ? आत्मा तो एकरूप है। उसमे कोई भेद नही होता। देह, अथवा यौनि कह लो, कर्मानुसार मिलती है।"

"अच्छा, आप यह बताइए, आत्मा मे परिवर्तन होता है या नही ?"

"नही, कुछ भी नही। आत्मा अपरिवर्त्तनशील, अनादि, अनश्वर और अविकृत है !"

"तब स्त्रियों मे आत्मा नही होती ! यदि स्त्रियो मे आत्मा है, तो मै कहूँगी—आत्मा कोई चीज नही। स्त्री के स्वामी, अभिभावक, पालक, उनकी अपनी कृति और सब कोई बदल जाते है। इन सबके साथ-साथ उसे भी बदलना पड़ता है। यह बदलना, यह परिवर्त्तन इतनी स्वाभाविकता के साथ होता है, कि मै कहूँगी वह अपने आप बदलती है। उसका गृह, कुल, गोत्र, नाम सभी कुछ बदल जाते हैं। आप ही बताइए, उसमें अपरिवर्त्तनशील आत्मा कैसे रह सकती है ?"

शशाङ्क चुप बैठा रहा बिना उत्तर देने की कुछ चेष्टा किये ही। माया तकिए के सहारे बैठ गई। उसने अपने नेत्रों को संकुचित किया। उसके हृदय की सम्पूर्ण शक्ति उस समय तिलमात्र के दृष्टि-विन्दु में समाई हुई थी। उन नेत्रों में एक याचना थी, याचना के साथ भोलापन था। वह कुछ चौकी।

सहमी हुई शशाङ्क को एकटक देखती हुई वह बोली—"आप मुझसे प्रेम करते है ?"

शशाङ्क चुप।

"आप मुझसे प्रेम करते है ?" फिर वही प्रश्न । पहले की अपेक्षा अधिक दृढ़ स्वर मे ।

"अब मै अपने उत्तर को ध्वान[illegible] नही कर सकता ।" स्वर मे कम्पन था ।

"अच्छा, तब यह लीजिए ।" कहकर माया ने अपने तकिए के नीचे से नङ्गा छुरा निकालकर शशाङ्क के हाथ मे दे दिया ।

छुरा बिजली के प्रकाश मे चमक उठा । शशाङ्क के रोम-रोम में बिजली दौड़ गई । वह अपने आपको सँभाले, इतने में माया ने आवेशपूर्ण स्वर में कहा—'जो जितना प्रेम कर सकता है, वह उतनी ही घृणा भी कर सकता है, प्रेम स्पष्ट है, और संहारक भी । मै आपके प्रेम मे सर्जन नही, संहार देखना चाहती हूँ । लीजिए, एक क्षण की देर न हो । लीजिए ।"

माया एकटक उसी याचनापूर्ण दृष्टि से शशाङ्क को ताक रही थी । उन नेत्रो मे एक अनिवार्य आदेश था, जिससे शशाङ्क खिचा जा रहा था । वह खडा हुआ । उसने छुरा हाथ में लिया । भुजा कुछ काँपी । किन्तु एक क्षण बाद, उसकी पूर्ण शक्ति से प्रेरित छुरा माया की रक्त-रिक्त छाती में घुस गया ।

माया की गर्दन तकिए पर ढुलक गई । वह स्थिर हो गई । आह भी न निकली ।

शशाङ्क छुरा निकाल कर चला गया ।

प्रातः जब शशाङ्क की आँखें खुली, उसने अपने को पुलिस थाने में पाया । उसे स्मरण हुआ, आधी रात के समय किसी अदृश्य शक्ति से खिचा हुआ वह उस जगह आ गया था ।

उसके मुकदमे को सुनने के लिए अदालत खचाखच भरी रहती थी । प्रत्येक नेत्र उसकी ओर घृणा के साथ देखता । ये नेत्र उसे धिक्कारते हुए कहते—नीच ! पापी ! हत्यारा !

वह सुनता, लोग चर्चा करते थे—"इस हत्यारे को देखो, जिसने बीमार पत्नी से जल्दी छुटकारा पाने के लिए, दूसरे विवाह की शीघ्रता में, अपनी मरती हुई पत्नी को, रात के समय छुरे से मार दिया ।"

हत्यारा ! पापी !

एक दिन मुकदमा सुनने के लिए माया की माँ अदालत मे आई। उसने एक बार शशाङ्क की ओर देखा और फिर घृणा से मुँह मोड़कर दूसरी तरफ देखने लगी।

इन घृणापूर्ण दृष्टियो के आघात से शशाङ्क कभी विचलित नही हुआ। इन हजारों नेत्रो को तिरोहित करते हुए उसकी ओर दो नेत्र ताकने लगते, जिनमें याचना थी, निश्छलता थी। ये नेत्र उसकी ओर एकटक देखते रहते।

× × ×

एक दिन वार्डन ने उसकी कोठरी का दरवाजा खोला। उसे निर्णय सुनाया जानेवाला था। उसे विश्वास था और वह चाहता था फाँसी की सजा हो।

वार्डन ने कहा "तुम छोड़ दिये गए !"

"छोड दिये गए ? क्यो ?" शशाङ्क ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"प्रत्यक्ष साक्षी के आभाव में आप निर्दोष सिद्ध हुए है।"

"अरे !" शशाङ्क के मुँह से एकाएक ही निकल गया ? क्षण भर बाद ही वह खिलखिलाकर हँसा। हँसा, खूब हँसा।

जेल के प्रमुख द्वार से निकला तो शशाङ्क को कुछ दिखाई नही दे रहा था। मार्ग नही था, मकान नही थे, मनुष्य नहीं थे। उसे दिखाई दे रहे थे, वे ही दो याचनापूर्ण नेत्र। निमन्त्रण देते हुए-से।

वह धीमे-धीमे चल रहा था। जेल के सामने से होती हुई जो सड़क नगर की ओर जाती थी, वह काफी ढालू थी। उस ढालू सड़क के बीचों-बीच शशाङ्क जा रहा था।

पीछे से, अपनी पूर्ण गति मे दौड़ती हुई, फौजी लारी आ रही थी।

शशाङ्क आकाश की ओर देखते हुए हँस रहा था। उसे दो नेत्र, बृहदाकार मे, दिखाई दे रहे थे जिनमें याचना थी, निमन्त्रण था।

ऐं ऐं ऐं......... ..

हार्न बज—

भों, भो, भों ।
फिर—
धुर्र, सर्र घप्प—
एक अट्टहास ?
और फिर—

—×—

प्रेम के लिए

सन् १९४२ के तूफानी दिन। सितम्बर बीत चला था।

अकस्मात् उस छोटे स्टेशन पर डाक गाड़ी के ठहरने से उसे आश्चर्य हुआ। वह वहाँ चबूतरे जैसे नाम मात्र के प्लेटफार्म पर निरुद्देश घूम रहा था। माल-गाड़ी अगले स्टेशन से छूट चुकी थी, ऐक्सप्रेस को वहाँ कुछ देर और ठहरना था। गाँव की मामूली पुलिस चौकी पर जैसे जिले का बड़ा पुलिस अफसर पहुँच गया हो। स्टेशन मास्टर अकेला सकपकाया-सा इधर से उधर चक्कर काट रहा था।

तीसरे दर्जे के डिब्बे में वहाँ एक व्यक्ति सवार हुआ, आयु २५ से अधिक नही होगी। तीन-चार मास से हजामत न बनने के कारण सिर और दाढ़ी-मूँछ के बाल बढ़े थे। इधर-उधर फैले बालों से उसका मुँह भद्दा-सा लगता था। फटी मिर्जई, घुटनों तक की धोती, कन्धे पर पड़ी गाढ़े की मैली चादर, चोटी तक ऊँचा लट्ठ, यह सब देखकर किसी को उसके गँवई-गाँव के साधारण किसान होने मे सन्देह नही होता था। पंजो से ऊपर आधी पिडलियों तक भूरी-भूरी धूल जम गई थी। धूल भरी पिडलियों के छोटे-छोटे बाल अजीब से लगते थे। मालूम होता था, वह बहुत दूर से पैदल आया है। पाँव-हाथ धोने का अवसर भी नही मिला। कुछ क्षण पहले एकाएक डाक गाड़ी के मिलने से उसे जो प्रसन्नता-मिश्रित आश्चर्य हुआ था, उसका कोई चिन्ह अब शेष नही था।

"बिना टिकट लिये कहाँ घुसे आ रहे हो?"

एक व्यक्ति ने ऊँचे स्वर मे ललकारा। इस ऊँची आवाज में इस बात का संकेत नही था कि बोलने वाला व्यक्ति चढ़ने नही देगा, या चढने पर जबर्दस्ती उतार देगा। उसके प्रश्न से केवल यह ध्वनि आ रही थी—तुम चल सकते हो किन्तु हमारी पद-मर्यादा का ध्यान रखना। हम भी कुछ है इतना जान गये तो तुम्हारे चलने से हमें कोई आपत्ति नही होगी।

बोलने वाले की बड़ी-बड़ी सुडौल मूँछें, गोरा औरा भरा मुँह, ऊँचा ललाट पर लुप्त प्राय: अस्पष्ट-सी भौहें किसी व्यक्ति को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त थी। खाकी ड्रेस मे गोरा रंग और रक्त की लालिमा निखर कर आकर्षक

लगता था। उस व्यक्ति के कन्धे पर पीतल के दो-तीन तारों और राजमुकुट के चिन्ह को देखकर नवागन्तुक ने मन ही मन प्रश्न किया—इतना बड़ा पुलिस का अधिकारी तीसरे दर्जे के डिब्बे में सफर क्यों कर रहा है ?

"माई-बाप ! आपकी दया चाहता हूँ। इस स्टेशन से पाँच मील दूर मेरी बहन की सुसराल है। बहुत सख्त बीमार है। खबर पाकर मैं यहाँ आया। आज उसे अठवाँसा लड़का हुआ। लड़का चलता बना। बहन सबेरे से ही अचेत औंधे मुँह पड़ी है। गाँव की दाई कहती थी, बहन का बचना कठिन है। कहती थी सोंठ, अजवायन और पीपल का काढ़ा दिया जाय तो शायद बहन बच सके। बीस झोंपड़ी का गाँव, ये मामूली चीजें भी नही मिल सकीं। पहले से मालूम होता तो ले आता। अब लेने जा रहा हूँ। बहन का पुण्य उदय हुआ इसलिए आज डाक गाड़ी भी यहाँ रुक गयी। पैसेन्जर मे जाता तो रात तक न लौट सकता। अब दोपहर की गाड़ी से ही आ जाऊँगा। भगवान ने चाहा तो बहन अच्छी हो जायगी। आपके चरण के प्रताप से मेरी बहन बच जाय। मै आपको तकलीफ नही होने दूँगा, खड़ा-खड़ा ही चला चलूँगा।

"हमने तुम्हें यह नही कहा कि तुम मत चलो। बड़े दुखी हो। बैठ जाओ, यहीं नीचे बैठ जाओ।"

उसकी करुण कहानी और दुखी चेहरे को देखकर पुलिस अफसर का हृदय पसीज गया। ग्रामीण अपनी चादर बिछाकर लेट गया।

"आप यह समझ लीजिए," पुलिस अफसर ने पास बैठे एक वृद्ध महाशय को सम्बोधित किया। अपनी पिछली अधूरी बात को शुरू करने के लिए बोले—"कॉंग्रेस के इस आन्दोलन से हमारे नाकों दम है। न दिन में चैन, न रात में नीद। कल साँझ ही अगले स्टेशन पर गुण्डो ने डाका डाला है। गाँव और स्टेशन की पुलिस चौकी जला दी गई। तीन-चार सिपाहियों की लाशें मिली हैं, कुछ का पता नही है। पटवारी का दफ्तर भी आग की भेंट हो गया। जो कुछ मिला गुण्डे उसे लेकर नौ दो ग्यारह हो गये। लोग इसे देश-भक्ति कहे, मैं तो डाका कहता हूँ, डाका ! इन कामों से देश का क्या भला होगा ? तुम पर हुकूमत करते हैं अँग्रेज। अँग्रेजों से तो बस नहीं चलता और लगे अपने

ही देश-भाइयो पर क्रोध निकालने । पुलिस के सिपाही भी इसी देश के है, देश-वासियों के मारने से देश का भला होगा ?"

अफसर की आँखों मे सुर्खी आ गई थी और साँस कुछ जोर से चलने लगी थी ।

नवागन्तुक ग्रामीण इन बातो को सुन-सुन कर मन ही मन उद्विग्न हो रहा था । मन में आया, अच्छा मुँह-तोड़ उत्तर दिया जाय; लेकिन वह अपनी स्थिति को जानता था । विवश हो उसे अपने मुँह की बात निगल जानी पड़ी । उसने अपने मन मे ही उत्तर दुहरा कर सन्तोष माना—'जब तुम लोग अपने देशवासियो को गुलाम रखने के लिए चौबीसों घण्टे कमर कसे रहते हो और अपने देश-भाइयों की आज़ादी छीनने के लिए आज तुम्हारी राइफिलें क्षण भर के लिए भी नही ठण्डी होना चाहती तब हम लोग तुम्हे अपना देशवासी और भाई समझने की भूल कब तक करते रहेगे ? हर आदमी से टैक्स वसूल करने के लिए अँग्रेज तो आता नही, और न अँग्रेज ही उन सब लोगो को जेल भेजता है, जो जनता की सेवा करने के कारण तुम्हारी आँखो का काँटा बन जाते है । अँग्रेजी राज को रस पहुँचाने वाली जड़े तुम्ही हो । पत्तो को तोड़ने से क्या लाभ ? जड़े काट डाली जायँ तो पेड़ अपने आप सूख जायगा ।'

अफसर बिना रुके कहता जा रहा था—

"रात की गाड़ी से वहाँ पुलिस पहुँच गई है । मै अब जा रहा हूँ । बहुत सारा काम हो चुका होगा । देखिए हम लोग कैसी खबर लेते है । चार की जगह चालीस जानें जायँगी और दस की जगह सौ रुपये रिआया से ही वसूल होंगे । एक के दस, सीधा हिसाब है ।"

"जी हाँ, हिसाब तो सीधा है" उस वृद्ध ने स्वीकृति दी ।

आगन्तुक मन ही मन बड़बड़ाया—

"हाँ हिसाब तो सीधा है, किन्तु हिसाब सीधा होने से ही सौदा सस्ता नहीं पड़ता ।"

अफसर की बातें उसे सहन नहीं हो रही थीं और इससे भी असह्य थी स्वयं उसकी अपनी विवशता । उसने अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाने के लिए

दरवाज़े की खिड़की से बाहर नजर डाली। छोटे-बड़े वृक्ष सरपट दौड़ रहे थे। आँखें किसी पर टिक नहीं रही थी। एक के बाद एक दृश्य घूमने लगा। अमावास्या की रात, घनघोर अँधेरा। घटाटोप बादल और इस सन्नाटे में धू-धू करता हुआ जलने वाला स्टेशन। रह-रहकर लोहे का चटकना। लप-लपाती हुई लपटे, किन्तु फिर भी उस सन्नाटे मे निस्तब्धता से आग इतनी सरलता से लगातार जल रही थी जैसे बर्फ की बड़ी चट्टान अपने आप पिघल कर चुपचाप छोटी हो जा रही हो। कुछ दूर उस प्रकाश से आलोकित सिपाहियों की खून से लथपथ लाशे ! एक लाश की अधखुली आँखें और फटा हुआ मुँह और इस दृश्य से उसका मस्तिष्क विषाद से भर गया। उसने अपनी नजर फेर ली। देखा, पुलिस-अफसर उतरने की तैयारी कर रहा है। सामान एक जगह रख कर उसने अपनी पिस्तौल हाथ मे ली। खोल कर देखा नौ कारतूस भरे थे। एक बार पिस्तौल को हाथ से तोल कर वह तन कर खड़ा हो गया। जैसे उसे अब किसी का डर नहीं।

स्टेशन आया। जलकर खाक हो चुका था। यात्री स्टेशन को देखने के लिए उतर पड़े, किन्तु पुलिस ने प्लेटफार्म घेर रखा था। यात्री या नागरिक नाम को नही थे। पचासो पुलिस के सिपाही कन्धो पर संगीन जडी बन्दूके रखे दाये से बॉये चक्कर लगा रहे थे। पुलिस अफसर उतरा तो सब ने तन कर सलामी दी। वातावरण में गजब का आतंक छाया था, यदि पत्ता भी खड़-खड़ाता तो उसकी ध्वनि कान में आ जाती।

नवागन्तुक ग्रामीण ने अपनी चादर लपेट ली। वह सोचने लगा, यही तुम्हारी सरकार है। मुश्किल से दस आदमियों ने यह सारा काण्ड किया और अब तुम अपने सैकड़ों सिपाही भेजकर जनता को बताना चाहते हो अपनी ताकत। बेचारी जनता तुम्हारी ताकत से कब इन्कार करती थी ? फिर यह सब क्यों ? वह गाड़ी के फर्श पर लेट गया। आँखें बन्द कर, सोने का प्रयत्न करने लगा।

उसकी चेतना में आ खड़ा हुआ एक सात-आठ साल का लडका। लड़के के आगे थी एक चार-पाँच साल की लड़की। एक बड़ा बँगला, बँगले का लम्बा-चौड़ा आँगन और सामने फैला हुआ हरा-भरा बगीचा। लड़की आगे-आगे

एक खास घेरे में घूम रही थी । घूमते समय वह कह रही थी, "छूओ जी, छूओ जी ।" लड़का उसके पीछे-पीछे चलकर उसी को दुहराते हुए चक्कर लगा रहा है । दोनों में से कोई किसी को छूता नही किन्तु छूने के लिए आवाहन दोनों कर रहे हैं । दोनो का अन्तर मिटता नही था, उसी फासले से लगभग आधा घण्टा तक दोनो चक्कर काटते रहे । अन्त में लड़का आगे बढा किन्तु लड़की कतरा कर पीछे मुडी और आगे बढ़ गई । लड़का झुँझला कर चल दिया । लड़की ने कहा, "अजी, कहाँ जा रहे हो ? बस थक गये । जरा छूकर ? दिखाओ न !"

"हम नही छुएँगें । तुम धोखा देती हो, धोखेबाज से कौन खेले ?"

"पकड न सके तो गाली देने लगे । धोखेबाज किसे कहते हैं जी ? फिर कभी न कहना । हिम्मत हो तो आओ ।"

× × ×

"तुम इतनी शर्मीली क्यों हो गई हो ? कल तक मेरे साथ खेलती थी, आज मुझसे इतनी शर्म करने लगी । तुम कितनी बदल गई हो ! कितनी बड़ी हो गई हो ?"

वह नन्हा बच्चा अब कॉलेज का ग्रेजुएट हो कर घर लौटा । दो-तीन वर्ष बाद घर लौट कर उसने देखा उसके साथ बचपन में खेलनेवाली लड़की का रूप ही बदल गया है । दो वर्ष में इतना परिवर्तन ! लड़की न केवल शरीर से बदल चुकी थी बल्कि उसका मन भी पूरी तरह बदल चुका था । उसकी शरारती और चचल ऑखों की पुतलियाँ जैसे किसी ने स्थिर कर दी थी और उसकी वह उछल-कूद, हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरना ! अपनी किलकारी से घर भर को गुँजानेवाली वह लडकी अब कहाँ चली गई ? ओह, समय भी कितना बड़ा जादूगर है, उसने अपने स्पर्श से, अपना जादू का हाथ लगाकर लड़की में कितना परिवर्तन कर दिया है !

"मैं बड़ी हो गई और आप जैसे उतने ही हैं ! स्वयं अपना मुँह देखिए । मैं इतनी तो नही बदली हूँ कि आपको इतना आश्चर्य करना पड़े !"

"मैं यदि आश्चर्य न भी करूँ तो क्या तुम पहलेवाली बन जाओगी ?

पहले मेरे आने पर तुम इस तरह धीरे-धीरे कदम रखकर नीची गरदन किये आती थी ? आज मालूम होता है तुम्हारे पाँव पृथ्वी से चिपके जाते हैं और गरदन उठाये नही उठती ! और तुम्हारा रूप ! कहाँ से पा लिया इतना रूप ? मै छोड़कर गया था एक अबोध बालिका और इस समय मेरे सामने खड़ी है अप्सरा ! यह रम्भा है या उर्वशी !"

"देखिए यदि ऐसी बाते करेगे तो मै चली जाऊँगी और कभी आऊँगी नहीं बुलाओ तब भी नही । कॉलेज में क्या यही पढ़ा है ? उर्वशी या रम्भा की कहानियाँ पढते रहे ! मै न रम्भा हूँ न उर्वशी ! श्रीमान जी जागते हुए भी स्वप्न देख रहे हो, जरा आँखें धोकर आइए ।"

"नही, आँखें धोने की जरूरत नही । मै इस स्वप्न को देखते ही रहना चाहता हूँ । जागने से क्या मिलेगा ? क्या जागरण इस स्वप्न से अधिक सुन्दर हो सकता है ? यदि वश चले और मै भगवान से कोई वर माँग सकूँ तो यह वर माँगूँगा कि हे भगवान, मेरे इस स्वप्न को शाश्वत बना दे । आँख खुलने पर यह स्वप्न ओझल न हो जाय ।"

"भगवान तक जाने की क्या आवश्यकता है, यह वरदान तो आपको किसी दूसरे से भी मिल जायगा । इसके लिए आपको किसी मन्दिर में दीपक नही जोड़ना पड़ेगा और न एकादशी का व्रत करके अपने शरीर को सुखाना होगा ! लेकिन एक बात ध्यान में रखिए, स्वप्न स्वप्न ही होता है और जागरण जागरण ही ! जागरण स्थायी है और स्वप्न अस्थायी ! स्वप्न अनेक आयेंगे और आप को लुभायेंगे भी ! एक ही स्वप्न देखते-देखते जब आप तंग हो जायेंगे उस समय आप उस भगवान से यही कहेंगे—हे भगवान, तुमने यह कैसा वर दिया ! इस स्वप्न से तंग आ गया हूँ । उस समय यदि ईश्वर आपकी प्रार्थना स्वीकार किये बिना अपने वरदान की लाज बचाने की चेष्टा करें तो श्रीमान जी को उन्हे दोष देने का कारण न मिलेगा ।"

"न मिले । यदि इस पृथ्वी तल पर ही कोई इस वरदान के देने की सामर्थ्य रखता है तो मुझे भगवान तक जाने की आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी ? यदि तुम

जानती हो तो उस देवता का नाम बताने की कृपा करो और उसकी पूजा-प्रसाद के लिए क्या-क्या करना पड़ेगा, इसकी शास्त्रीय विधि भी बता दो !"

"समय आने पर सारी विधि बता दी जायेगी, लेकिन एक बात कहे देती हूँ, जिसने आपको पास किया है, उसमें कुछ ज्यादा बुद्धि नही थी। लो मैं चली !"

× × ×

गाड़ी अपनी तेज चाल से मंजिल तय कर रही थी। पहिये अपने निश्चित ताल-स्वर मे थिरक रहे थे। वायु के झोके आ रहे थे। ग्रामीण ने बाहर दृष्टि डाली। सपाट मैदान था, ज्वार-बाजरे की फसल कट चुकी थी, खेतों में छोटे-छोटे डठल खड़े थे। दूर-दूर तक जाकर भी दृष्टि को कुछ मिलता नही था, इसलिए लौट आती थी। एक-एक कर के तार के खम्भे भागे जा रहे थे, खम्भों के तार कभी फैलते दिखायी देते और कभी सिकुड़ते। एक के बाद दूसरी घटना सामने आ रही थी—

लड़की की आँखो के आँसू सूख चुके थे, किन्तु अभी वह रह-रह कर सिसकियाँ भर रही थी। बोलने का प्रयत्न करती थी किन्तु हृदय में शोक का वेग इतनी जोर से उठता था कि मुँह से एक शब्द भी नही निकलता था। आधा घण्टा तक चुप रहने के बाद लड़की ने सिर ऊपर उठाया और उस युवक का हाथ पकड़कर उसने कहा—"नही, आज नही जा सकेगे। अपने जीवित रहते मै आपको जाने न दूँगी। यदि मै ससार मे न रहूँ तो फिर आप अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में स्वतन्त्र रहेंगे। मेरी प्रार्थना, प्रार्थना नही आज्ञा, आपको स्वीकार करनी ही होगी। आप इस तरह अपना बलिदान नही कर सकते। जो कुछ बलिदान करना पड़ेगा मै करूँगी। यदि मै न रहूँ तो संसार का क्या बिगड़ जायगा। आप जीवित रहेंगे तो बहुत कुछ कार्य कर सकेंगे। यदि मै न रहूँगी तो कोई न कोई नारी मेरे रिक्त स्थान को पूरा कर लेगी, किन्तु आपका अभाव क्या किसी से पूरा किया जा सकेगा ?"

"नहीं, अब मेरा जीवन निरर्थक हो चुका है। इसकी सार्थकता इसी में है कि किसी पुण्य कार्य मे, देश के कार्य मे, इसका विनियोग कर दूँ। तुम्हारी

शक्ति पर मुझे विश्वास है, इसलिए मैं निश्चिन्तता से अपना उद्देश्य पूरा कर सकूँगा।"

"आप फिर देश के लिए बलिदान की बात करने लगे। यदि आप सच्ची और वास्तविक उत्सर्ग की भावना से बलि-पथ पर जाते तो आपके उस कार्य से मुझे जितना हर्ष होता उतना किसी दूसरे को नही, किन्तु यह गौरव मेरे भाग्य मे नही है। उस समय मैं स्वयं आपको बिदा करती! पर बात ऐसी नही है। इस समय आपका भविष्य पर से विश्वास उठ गया है। भविष्य में कोई अवलम्बन न देखकर आप अपनी निरर्थकता अनुभव कर रहे है। यदि जीवित रहेंगे तो मै समझती हूँ आपको भूतकाल की स्मृतियाँ आश्रय देंगी और उनके सहारे आप भविष्य का निर्माण कर सकेंगे। लेकिन इस तरह भविष्य से निराश होकर अपने आपको समाप्त करने की भावना मे कायरता है। आपकी इस दुर्बलता से मुझे मर्मान्तिक वेदना होती है। आप इसे देश सेवा का नाम दे या बलिदान का। मैं इसे आत्म-हत्या के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम न दूँगी। आत्म-हत्या के साथ-साथ इसमें महान् स्वार्थ है। केवल अपनी शान्ति और अपने दु:ख से छुटकारे की उत्कट इच्छा ही आपको अग्रसर कर रही है। ऐसे बलिदानो से कभी किसी देश का भला नही हुआ और साथ ही जब भ्रम का परदा दूर होगा उस समय आय स्वयं अपने कार्य पर पश्चात्ताप करेंगे। उस पश्चात्ताप मे मेरा अंश कितना रहेगा, मैं जानती हूँ। तब क्या आपकी इच्छा है, मैं दूसरे लोक में जाकर भी, यदि वैसा कोई लोक वास्तव मे है—पश्चात्ताप और वेदना के बोझ से दबी रहूँ? मेरे लिए, मेरी प्रसन्नता के लिए आपको प्रतिज्ञा करनी होगी, आपको जीवित रहना है और जीवन प्राप्ति के लिए शक्ति भर प्रयत्न करना है। पलायन की भावना मन से निकालिए और जो कुछ आता है उसका सामना करने के लिए अपने मन में सामर्थ्य एकत्रित कीजिए।"

"मैं इस पर विचार करके कल उत्तर दूँगा।"

दूसरे दिन युवक जब उस लड़की के घर गया तब तक सन्ध्या हो गई थी और अँधेरा गहरा हो चुका था। चिड़ियों की चौं-चहाट बन्द हो गई थी।

युवक ने उदासी और विषाद के साथ धड़कते हृदय से बँगले के बाग मे प्रवेश किया। वृक्षों के झुरमुट से उसे धीमे स्वर में सुनाई दिया—

"बेटी, जो कुछ होना था हो गया, अब मेरी बात मान जा, कोई नहीं जानेगा।"

युवक के कान खड़े हो गये।

"नही माँ, यह मुझसे नही होगा। मैंने तुम्हारी किसी बात का आज तक उत्तर नही दिया, मै तुम्हारी बात को टालना भी नही चाहती, लेकिन न जाने क्यो यह मुझसे नही होगा। तुम कहो तो अभी पत्थर बाँध कर अपने घर की बाडी मे कूद जाऊँ या तुम बाजार से अफीम मँगवा दो, मै खाकर सो जाऊँगी। लेकिन, हाथ जोड़ कर मै तुमसे प्रार्थना करती हूँ, इस बात के लिए जोर मत दो माँ। मेरे लिए उससे बढ़कर बुरी बात कोई नही होगी। बस इससे बचने का एक ही रास्ता है, मुझे अफीम मँगवा दो, तुम्हें और कुछ नही करना पड़ेगा। लेकिन इस रास्ते पर चलने के लिए मत कहो।"

"तू क्या कह रही है!" माँ गरज उठी—"तुझे इसका भी ध्यान है तूने क्या कर डाला है? वंश पर कालिख का दाग लगा दिया। अगर मैं तेरे ये चरित्र जानती तो पैदा होते ही गला घोंटकर उफ तक न करती!"

"तो उस समय की भूल को अब गला घोट कर ठीक कर सकती हो न माँ।"

"हाँ, ठीक तो कर सकती हूँ, लेकिन तेरी जैसी राक्षसी का हृदय जो मुझ मे नही है! अब वह भूल तेरा गला घोटकर नही अपना गला घोटकर ठीक हो सकती है।"

"नहीं माँ, मै ऐसा नही होने दूँगी। तुम्हारे ऐसा करने से पहले ही मैं तुम्हारी भूल सुधार दूँगी। तुम्हें यह सब नही करना पड़ेगा।"

"नहीं करना पड़ेगा तो फिर मेरा कहा क्यों नही करती।" अबकी बार माँ के स्वर में कम्पन था और गीले कण्ठ के कारण स्वर भी बोझल हो गया था—"बेटी तू नहीं जानती मै तुझे कितना प्यार करती हूँ। तेरे भाई-भावज तुझसे कितना स्नेह करते हैं। मनुष्य से भूल हो जाती है, बड़ो-बडो से भूल हुई है। मान लो तुमसे भी भूल हो गई, तो क्या मै तुझे छोड़ दूँगी? बच्चा कीचड़ में

भर जाता है तो माँ ही उसे धोकर साफ करती है न ? मै तुझे निष्कलंक कर दूँगी। तुझे लोक-परलोक की चिन्ता छोड़कर मेरी बात माननी चाहिए। माँ हूँ तो, बाप हूँ तो मैं ही हूँ ! कुछ भी नहीं बिगड़ा है, भूल हो गई सो हो गई।"

"मै तुम्हारी सब बाते मानती हूँ माँ, लेकिन यही बात नही मानती कि मुझसे भूल हुई है। अगर भूल होती तो मै स्वीकार कर लेती। उस भूल के लिए मुझे जो प्रायश्चित्त करना होता खुशी-खुशी करती। तुम मुझसे सब बाते जानना चाहती हो और नाम भी जानना चाहती हो। इस सब से क्या अर्थ' निकलेगा ? सब कुछ व्यर्थ । मैंने जो कुछ पढ़ा है, जो मैंने सुना है सब के आधार पर मै इसी बात पर पहुँची हूँ कि इस जगत में मेरे लिए अब कोई स्थान नही है। माँ, बस एक बार मै अपनी मर्यादा को तोड़कर तुम से कहना चाहती हूँ, इसलिए कि शायद उस बात को कहने के लिए मुझमे फिर शक्ति न रहे। तुम्हें यह बता दूँ कि मुझसे कोई भूल नही हुई। हम दोनों में स्नेह था। पक्का प्रेम था। बरसो के बाद भी किसी दिन मैंने यह नही जाना कि उस स्नेह में कही सन्देह का लेश है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारा प्रेम इस समय भी पहले से अधिक उज्ज्वल और ध्रुव है। और मै समझती हूँ प्रेम पाप नही है। प्रेम पुण्य है और पवित्र है। सांसारिक व्यक्ति यदि उसे उसके पवित्र रूप का न देख सके तो यह प्रेम का दोष नही। मै जानती हूँ कि किसी समय मेरे मन की इस पवित्रता का स्थान वासना ने ग्रहण नही किया। जो एक स्वाभाविक और सरल आत्माओं का सम्बन्ध है, उसमे किसी प्रकार की भूल की सम्भावना नहीं। यदि कोई कहे कि मुझसे भूल हुई है तो मै स्वीकार नहीं करूँगी। भूलना या याद रखना यह इस मार्ग में है ही नही। हाँ, संसार के नेत्रों मे उसकी पवित्रता नही, कुछ और ही दिखाई देता है। संसार को भी हमें मानना है। इसी लिए अपने कार्य के लिए मुझ प्राणों का मूल्य चुकाना पड़े तो मैं इससे पीछे नही हटूँगी, समाज को इसका पूरा-पूरा मूल्य चुका दूँगी। किन्तु इस संसार से जाते समय और यहाँ रहते समय भी मैं अपने हृदय पर यह बोझ नही रख सकती कि मैंने एक कार्य किया और उस कार्य की अच्छाइयाँ

और आनन्द का उपभोग मैंने किया और जिस समय उसका मूल्य चुकाने का समय आया उस समय मै पीछे हट गयी। नही माँ, यह नही होगा। मैंने जो कुछ किया है अच्छा किया है और अच्छाई के लिए जो देना पड़ेगा मै दूँगी। तुम्हे कोई पाप नही करना पड़ेगा। माँ, आज मैंने बहुत कह डाला। क्या किसी बेटी ने अब तक अपनी माँ से ऐसा कहा है ? इसके लिए मुझे क्षमा कर देना माँ, यही मेरी प्रार्थना है।"

युवक ठहर न सका। आगे की बात सुनने की लिए वह वहाँ रुक न सका !

× × ×

गाड़ी कुछ धीमी हो गई थी। ग्रामीण का हृदय धड़क रहा था। वह पसीने से तर हो गया था। गाड़ी ठहर रही थी। ग्रामीण ने अपनी लाठी उठाई और दरवाजा खोला। दूसरे यात्री ने पूछा—"क्या यही उतरना है ?"

"हाँ, मेरी यात्रा यही समाप्त हो गई।"

और वह नीचे उतर गया.....

खून और केशर

"तुम्हारी आँखो मे आँसू ! माँ, अपनी मुस्कान से इस बिदाई को मंगल-मय बना दो !"

बिदाई शब्द उच्चारण करते-करते उसका कण्ठ भर आया और उसकी आँखों से नन्हे-नन्हे मोती ढुलक गये ।

माँ, जो लाख कोशिश करने पर भी अपने आँसू नही रोक सकी थी, बेटे के आँसू देखकर सहम गई । उसके ओठों पर हँसी की रेखा दौड़ गई, यह रहस्य उसके अन्तस्तल के रुदन को अदृश्य रखने में सफल नही हुआ ।"

इसी समय स्टेशन पर लगी हुई घण्टी तार में प्रवाहित होनेवाली बिजली से टकराकर अपने आप वेग से बज उठी । गाडी अगले स्टेशन से छूट चुकी थी ।

घण्टी के वेग के साथ मस्तिष्क मे एक, दो, तीन, सैकड़ो विचार घूम गये । बिदा लेनेवाले यात्री को लगा, उसे बहुत कुछ कहना है; बिदा देने वाले को लगा, उसे बहुत कुछ सुनना है; किन्तु उनके पास समय नही है । केवल तीस मिनट बाद वे एक दूसरे से दूर हो जायेंगे—दूर, बहुत दूर, दस मील, सौ मील, हजार मील ।

"बेटा ! तुम यहाँ से सीधा काश्मीर जाओगे ?"

माँ ने बात चलाने के लिए प्रश्न किया, वैसे हृदय में स्तब्धता थी, कुछ सूझ नही रहा था ।

"मालम तो यही होता है । हमारी सेना चली गई । तार आया है. तुम ी दूसरी गाड़ी से चल दो ।'

"काश्मीर यहाँ से कितनी दूर होगा, बेटा ?"

"बहुत दूर नही, माँ ! यही दिल्ली के पास । यहाँ से दिल्ली, दिल्ली से काश्मीर ।"

"दिल्ली तो दूर नहीं है । अपने मदुरा के कितने ही लोग वहाँ नौकर हैं । यहीं कहीं होगी ?"

"हाँ, माँ !"

'हाँ, याद आई ! वही काश्मीर जहाँ से केशर आती है। तेरे दादा ने सारे तीर्थों की पैदल यात्रा की थी। वे अमरनाथ के दर्शन करने काश्मीर गये थे। लौटते समय केशर लाये, कितनी सुगन्धित थी वह केशर ! उसका रंग कितना अच्छा था। वह हरी-हरी थी, लकिन उसका रग सोने जैसा उतरता था। आज जो केशर आती है, उसका रग गहरा होता है, लेकिन उससे कितना फीका रंग उतरता है !"

"माँ ! इस केशर से देवार्चन करना पाप है ! यह असली केशर नही है। मामूली घास के फूलों पर खून की ललाई चढ़ाई जाती है। इस केशर में अशुद्धता होती है। देवता इसे स्वीकार नही करते।".

"विष्णु-विष्णु !" प्रायश्चित्त के स्वर ने बुढ़िया ने कहा। उसके गौर मस्तक पर पसीन की बूँदे झलक आई थी। प्रातःकालीन देवार्चन का केशर-चन्दन इस पसीने मे डूब कर अपना सुनहला रग खो चुका था। अपनी रेशम की साड़ी से पसीना पोंछते हुए उसने कहा—"बेटा, आजकल किसी पर विश्वास नही किया जा सकता।" बुढिया ने आँखे वन्द कर ली और हाथ जोड़कर अदृश्य के निकट प्रार्थना की—"देव, कलियुग मे धर्म-कर्म नही रहा। तुम अन्तर्यामी हो, मै कल से तुम्हे ऐसी केशर नही चढाऊँगी।"

"माँ, तुम इतनी घोर प्रतिज्ञा क्यो करती हो ? मै जल्दी ही काश्मीर विजय करके लौटूँगा। उस समय तुम्हारी पूजा के लिए मन भर शुद्ध केशर लाऊँगा। उमर भर देवता की पूजा करना।"

"हाँ, यह तो बहुत अच्छा होगा ! जरूर लाना, भूलना मत।" और फिर उसने श्रद्धा से मस्तक झुकाकर अदृश्य से निवेदन किया—"महाविष्णु, तुम सुनना। तुम मेरे लाल की रक्षा करना। इसके लौटते ही मै मीनाक्षी के समस्त देवताओ को केशर जल मे स्नान कराऊँगी।"

इसी समय भक्-भक् करता हुआ रेल का इंजन उन लोगों के निकट से गुजरा। गाड़ी के इस शोर मे उसकी यह प्रार्थना विलीन हो गई और अदृश्य उस प्रार्थना को सुन नही सका।

"अरे, मुझ याद नही रहा। मन्दिर के पन्तलू ने मुझे यह यंत्र लिख दिया

हैं । मै बूढी हो गई, याद ही नही रहता । प्रातःकाल के मागल्य के पुष्प हैं । देव तेरी रक्षा करें ! ला, मै तेरी भुजा मे बाँध देती हूँ ।"

किन्तु बुढ़िया तत्काल वह यन्त्र और मांगल्य भुजा पर नही बाँध सकी । आकृति पर झलकने वाली हृदय की वेदना जैसे हाथ की अँगुलियों को पकड़ बैठी थी ।

गाड़ी छूट चुकी थी । बुढ़िया दो क्षण चुपचाप उसकी तरफ खड़ी देखती रही, फिर वह संगी-साथियो के पीछ चल दी ।

आज केशव कितना सुन्दर लग रहा था । उसने पहली बार फौजी वेश पहना था । गोरा रंग, खाकी कपड़ों में निखरकर कितना आकर्षक लग रहा था ! फिर कन्धे पर लगे हुए दो-तीन पीतल के तारे स्टेशन की रोशनी में दमक कर मुख की कान्ति को बढ़ा रहे थे । फौजी कोट मे उसकी छाती उभरी हुई थी, बुढ़िया की आँख के आगे वह रूप जैसे स्थिर हो गया था । फिर अपनी जाति की तीन-चार लड़कियाँ आँख के आगे से निकल गईं । रेशम की वे साड़ियाँ, उनका हल्का-हल्का गुलाबी रंग ! ठोडी और गले पर लगा हुआ केशर का पीत रंग ! कमर पर झूलती हुई काली-काली वेणियाँ, जिन पर रंग-बिरंग पुष्पों के गुच्छे लटक रहे थे और वेणी के सिरे पर गुंथा था केवडे का पत्ता,। लेकिन् माँ ने सोचा फौजी वेश और कलापूर्ण आकृतियों में कोई सामंजस्य नहीं है ।

× × × ×

बैशाख के अन्त में यहाँ काश्मीर ने जैसे नींद से अंगड़ाई ली है । बर्फ की मोटी चादर में लिपटी हुई भूमि जैसे ठिठुरकर सिकुड़ गई थी, किन्तु अब उसने अपनी वह चादर उतारकर नदियो को सौंप दी और उसका कण-कण विकसित हो उठा । विश्व में दूसरे प्रदेश सूरज की भयानक गर्मी से झुलसे जा रहे हैं, अब काश्मीर में बसन्त का आगमन हो रहा है । लड़ाई के मैदान सर्दियों में सुनसान पड़े रहे, कभी-कभी तोपों की आवाज इस सन्नाटे को तोड़ देती थी । छः महीने तक इस ठिठुरन में देश की रक्षा करनेवाले वीर बसन्त की शोभा देखने श्रीनगर आ गये थे और उनका स्थान नये सैनिको ने ले लिया

था। केशव का दल भी श्रीनगर लौट आया था। सरहद के लम्बे-तगड़े पठान जिनके प्रदेश में न वसन्त होती है न बरसात, बारहों महीने सूखा और कड़ाके की सर्दी, अपनी बन्दूकें तान इस प्रदेश पर अधिकार करना चाहते हैं, किन्तु जैसे श्रीनगर और काश्मीर की घाटी को उन हिंसकों का कोई डर नहीं। वह अपने पूर्ण यौवन में किलकार उठी है। झेलम ने अपना मधुर संगीत छेड़ दिया है। चीनार के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष निर्भय हो हवा के झोकों से अठखेलियाँ करने लगे हैं और गुलाब के फूलों ने गुलाब के पत्तों को ढँक लिया है। प्रकृति निर्भय है, उसे उन षड्यन्त्रों का आभास तक नहीं जो इस भूमि के आसपास रचे जा रहे है।

इस भूमि को भय हो ही क्यों ? जब मातृभूमि की रक्षा के लिए उसके सुपुत्रों ने अपनी बन्दूकें सम्हाल ली हैं।

काश्मीर के सुन्दर, गोरे-गोरे नौजवान और सेब के रंग को लजानेवाली कोमल सुकुमारियों ने बन्दूक उठा ली है और वे सब भारतीय सैनिकों के कदम से कदम मिलाकर अपने देश की रक्षा के लिए समरांगण में पहुँच गये हैं।

"इन छः महीनों मे श्रीनगर जैसे बदल गया है। छः मास पहले इस घाटी में कितना भय था। पूरा प्रदेश उजाड़ हो चुका था, किन्तु छः महीनों में पूरा दृश्य बदल गया है। लोग कितने खुश हैं, घर-घर में उत्सव मनाये जा रहे है।"

केशव ने अपने काश्मीरी साथी रहीम से कहा। रहीम काश्मीरी स्वयं-सेवको के एक जत्थे का नायक है। केशव अब लेफ्टिनेंट से कैप्टन बन गया है। रहीम का जत्था केशव के आदेश में लड़ रहा है। रहीम ने उत्तर दिया—

"जनता की ताकत अटूट है कप्तान! राजा या डिक्टेटर समझते हैं जनता को हम हरा देंगे। लेकिन उनकी ताकत महदूद होती है। रिआया का एक आदमी मरता है तो दूसरा उसकी जगह ले लेता है और दस खर्च होते हैं तो बीस की कमाई होती है, लेकिन जनता के दुश्मन अपना नुक्सान पूरा नहीं कर पाते।"

"यह तो मै साफ देख रहा हूँ," केशव ने कहा। उसने अपने हाथ से

कन्धो पर लगे हुए राष्ट्रध्वज की तिरंगीपट्टी को छुआ, और बोला—"रहीम, मैंने कालेज मे काश्मीर के बारे मे एक पुस्तक पढी थी, उसमे लिखा था, 'काश्मीर की भूमि कितनी उपजाऊ है ! उसमें कितनी ताकत है ! लकडहारा किसी पेड़ पर प्रहार करके अपनी कुल्हाड़ी उठाता है कि उठाते-उठाते उस पेड़ का घाव भर जाता है ।"

'बहुत खूब, बहुत खूब !" अपनी मातृभूमि की भक्ति से रहीम का मस्तक झुक गया ।

"इतना ही नही, रहीम." केशव ने कहना शुरू किया—"आगे चलकर तो कल्पना की हद हो गई है । कवि ने लिखा है, काश्मीर की घाटी में लोग ऐसी कोठरी में भोजन बनाते हैं, जहाँ हवा नही होती । कारण देते हुए कवि ने बताया, लोग मुर्गे या दूसरे परिन्दे को हलाल करके पकाते है लेकिन थाली में परसते ही अगर उसे उस घाटी की हवा लग जाय तो वह फिर जिन्दा होकर उड़ जाता है ।"

"बहुत खूब, कप्तान बहुत खूब ! सचमुच हमारी हवा की यही तासीर हैं । इस जमीन पर कितने हमले हुए हैं, कुदरत भी हर साल बरफ बरसा कर इसे कितना तबाह कर जाती है, लेकिन फिर मौका पाते ही लगता है, जैसे वहाँ कुछ हुआ ही नही । इन पठानो ने हम पर कम अत्याचार नही किये । एक—एक कहानी सुनो तो रोमाच हो जाय । ये लोग चले है काश्मीर पर राज करने । तुमने सुना है, सरहदी लोग जब-जब श्रीनगर के पास पहुँचे तो उनके कंधो पर मोटे-मोटे कम्बल थे । उन्होंने यहाँ का सामान अपने कम्बलों में न बाँधकर शालों मे बाँधा । उनकी नजरो मे वह कम्बल ज्यादा कीमती था लेकिन जनता का घाव भर गया है । आज वह स्वस्थ होकर आक्रमणकारियों को देश से भगा रही है ।"

"सचमुच बड़ा सुन्दर प्रदेश है ।"

"आपको अच्छा लगा यह स्थान

रहीम ने प्रश्न किया ।

"मुझे तो लगता है जैसे मै अपने मलय प्रदेश मे ही हूँ। वैसी ही फूलों से लदी झाड़ियाँ।"

"आपको इन दोनों प्रदेश मे कोई अन्तर नही दिखाई देता ?"

"नहीं ! बस अन्तर इतना ही है कि हमारे यहाँ मीलो तक फैले हुए मैदान है और यहाँ चारों तरफ पहाड़ियाँ। हमारे यहाँ ताड़ और नारियल के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष है और काश्मीर में चीनार और भोजपत्र !"

"सचमुच मुझे भी यही लगता है, जैसे दक्षिण और उत्तर के ये दोनों प्रदेश बिल्कुल एक ही हों। यहाँ पहाड़ियों की वजह से चाहे कुछ उलझन-सी पैदा हो गई हो, लेकिन यहाँ के लोगों के दिल बिल्कुल आपके मलय देश की तरह खुले और सख्त है।"

"मैंने यहाँ आकर अनुभव ही नही किया, कि मै किसी पराये देश में आ गया हूँ। यहाँ औरतों को देखता हूँ तो लगता है जैसे मेरी माता का स्नेह उनकी आँखों से झलक रहा है। वही भाव, वही विचार। मै जहाँ-जहाँ गया लोगो का प्यार मिला। हम जिन पहाड़ियों में लड़ रहे थे, वहाँ दस-दस पाँच-पाँच घर के गाँव बसे है। जब कोई युवती उन चोटियों पर दोपहर के समय अपना ग्रामीण गीत गाने लगती तो पूरी पहाड़ी गूँज जाती। मलय के घन उपवनों में पुष्प-संचय करने वाली तरुणी के स्वर और उसके स्वर मे कुछ भी तो अन्तर नही होता।"

"इसीलिए तो हम एक हैं कप्तान।" रहीम की आँखे उत्साह से चमकने लगी।

"हिन्दू-मुसलमान के विरोध ने भारत के इतिहास को कलंकित कर दिया है भैया। लेकिन कश्मीर आगे आनेवाली पीढ़ियों को सन्तोष प्रदान करने के लिए सामग्री उपस्थित करेगा। भारत के अन्य भागों मे दोनों सम्प्रदाय जब एक दूसरे के खून के प्यासे बने हुए थे, उस समय कश्मीर मे हिन्दू मुसलमान कन्धा से कन्धा मिलाकर अपने दुश्मन का सामना कर रहे थे।"

"हाँ, कप्तान, काश्मीर को सदा इसका गौरव रहेगा। काश्मीर एक ऐसी मिसाल कायम करने जा रहा है, जिस पर आनेवाली पीढ़ियाँ खुशी मनायेंगी।"

"खून, कत्ल, गारतगिरी और वहशियाना हरकतों से ऊपर उठकर हमने इन्सानियत को महफूज रखने की कसम खाई है। जिन सिखों को देखकर पश्चिमी पंजाब में मुसलमानों का खून खौलने लगता है, वे सिख यहाँ निर्भयता से घूमते हैं। इस घाटी के किसी भी गाँव में वे चले जायें, वहाँ उनका स्वागत होता है। मैंने देखा है, लोग उनके आगे लाल-लाल सेब और अखरोटों का ढेर लगा देते हैं।"

बसन्त बीत गया और यह टुकड़ी अपने मुहाज पर चली गई। अबकी बार सैकड़ों मील दूर चला गया था, उनका मुहाज लेकिन प्रदेश वही था, शीत की ताण्डव लीला वही थी। हाँ, लड़ाई वैसी नहीं थी। गोले और गोलियाँ बदली हुई और चलाने का ढंग, लड़ने का ढंग बदला हुआ था। इस बार केशव ने अपनी वीरता से लोगों को चकित कर दिया और एक दिन वह घायल होकर सैनिक रुग्णालय में पहुँच गया। घाव गहरा था। पाँव पर लगा था। खून बहुत बह चुका था।

अभी शाम नहीं हुई थी, लेकिन कुहरे का धुंध छा गया था। खन्दकों से बाहर निकलना मुश्किल था, फिर भी सैनिक गरम-गरम राख की हण्डी छाती पर लटका और उस पर गरम कोट पहन पहरे पर तैनात थे। रहीम अपने प्यारे कप्तान से मिलने गया। कप्तान ने उसे देखा, मुस्कराया, बोला—"ड्यूटी छोड़ कर यहाँ क्यों चले आये, रहीम?"

"तुम्हारी खिदमत के लिए। मुझे महीने भर की रुखसत मिल गई है।"

"नहीं, नहीं, अब तुम्हें खिदमत करने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। मेरा काम खत्म हुआ, अब मुझे कोई दुःख नहीं है। अच्छा हो जाऊँगा तो ठीक है, नहीं तो तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।"

"कौन-सा?"

"चलते समय मेरी माँ ने कहा था—बेटा! भगवान की पूजा करने के लिए तुम कश्मीर से शुद्ध केशर लाना—तुम माँ की इच्छा पूरी कर सकोगे?"

"क्यों नहीं, तुम्हारा पता मेरे पास है, लेकिन तुम इतने निराश क्यों हो रहे हो?"

"निराश नहीं, मुझे बहुत आशा आ गई है। मुझे साफ दिखाई दे रहा है, भारत माता के मस्तक का गया हुआ मुकुट उसके शीश पर फिर सुशोभित हो गया है। इस मुकुट को अब कोई दूर नही हटा सकेगा। मुझे बहुत आशा आ गई है रहीम ! तुम मेरी, मेरी ही नही मेरी माँ की भी, इच्छा पूरी करना !"

"आप निश्चित रहिए कप्तान !"

"लेकिन तुम मुसलमान हो, तुम मेरी माँ की पूजा के लिए केशर लेजाओगे ?"

"तुमने मेरी माँ की पूजा में अपना खून चढ़ाया, लाल-लाल, गरम-गरम खून ! और मैं केशर भी नही चढ़ा सकूँगा ?"

"देखो, केशर बिल्कुल शुद्ध हो !"

"हाँ, केशर मेरे घर पैदा होती है। मेरी औरत घर का काम-धंधा करती है और मेरी बहन झील में बजरा खेती है। उस बजरे में वह केशर भी बोती है। बजरा खेते समय वह अपनी केशर के कितने मधुर गीत गाती है ! मै वही केशर, ताजा-ताजा केशर ले जाऊँगा तुम्हारी माँ के लिए।"

× × × ×

और एक दिन मीनाक्षी का महादेवालय घण्टों की ध्वनि से गूंज उठा। उस दिन एक मुसलमान देवार्चन के लिए वहाँ पहुँचा था, किन्तु वह प्रमुख द्वार पर खड़ा हो गया।

माँ ने अपना आँचल कमर से बाँध लिया, उसके हाथ मे पुष्पों का हार था।

"यह लो माँ, कश्मीरी शाल, देवता को अर्पित करना इसे। यह हमारे घर में बूढ़ी माँ ने तैयार किया है और यह लो केशर !"

"यह केशर शुद्ध तो है न बेटा !" माँ के स्वर में वेदना थी, किन्तु आँखों में आँसू नहीं थे।

"हाँ माँ, बिल्कुल शुद्ध !"

"आजकल केशर में खून का पुट दिया जाता है। इस मे तो खून का पुट नही है ?"

"नहीं माँ," लेकिन रहीम को लगा जैसे वह झूठ बोल रहा है। उस हरी-हरी केशर में केशव का खून झलकता दिखाई दिया !

युवतियाँ ऊँचे स्वर से आलन्द और मारण के गीत गाने लगी और मन्दिर के घण्टे जोर से बजने लगे। बीच-बीच में शंख की ध्वनि आ रही थी।

देवता केशर जल से स्नान कर रहे थे। चन्दन चढ़ा, पुष्प चढ़े, आरती की आभा में देव का मुकुट चमकने लगा। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की— "देव, मेरे एक ही लड़का था, मैंने उसे तुम्हारे देश के चरणों में चढ़ा दिया। दूसरा कोई बालक नही है, होता तो उसे भी तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर देती।"

मन्दिर के घण्टे फिर जोर-जोर से बजने लगे

दूर देश है जाना

"भाभी, मन लगा तुम्हारा ?"

सन्ध्या समय काम से लौटने के बाद जीवन ने जमना से प्रश्न किया।

"यहाँ मन लगाने के लिए कोई काम मिले तभी न मन लगेगा। गर्मी के ये पहाड़-से लम्बे-लम्बे दिन काटे नही कटते। तुम शहर की बड़ाई करते-करते थकते नहीं थे। राम-राम ! यह भी कोई जीवन है। दिन भर पौं-पौं, टन-टन, चीख-पुकार, पल भर शान्ति नही।"

जीवन हाथ-पाँव धोकर इस समय तक जमना के पास ही एक बोरी पर बैठ चुका था। उसने कहा—

"यहाँ आये अभी दिन ही कितन हुए हैं ? धीरे-धीरे आदत पड़ेगी। दस-पन्द्रह दिन बीत जाने दो, स्वयं गाँव का नाम न लोगी।"

"ओहो, यह भली कही, गाँव का नाम न लूँगी ! कहाँ हमारा गाँव और कहाँ यह गन्दा शहर। यहाँ जैसे दम घुटा जाता है। कदम-कदम पर ऊँची ऊँची दीवारें, आँखें यहाँ-वहाँ से तरसती लौट आती हैं। सड़क पर इतनी तरह के आदमियों के ये झुण्ड के झुण्ड न जाने कहाँ से आते हैं, कहाँ जाते हैं। इन सब में, मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि मर गई हूँ, कि सो रही हूँ कि स्वप्न देख रही हूँ। गाँव के हरे-भरे खेत, लम्बे-चौड़े मैदान, दूर-दूर बसे हुए छोटे-छोटे घर, न कहीं आँखों के लिए रुकावट और न कानों पर ध्वनि का असह्य बोझ। खेत पर दिन-दिन भर अकेले काम करते समय भी लगता था—मैं भी कुछ हूँ, संसार में मेरा भी कुछ है।"

"जमना भाभी, तुम अभी शहर का सुख जान नहीं पाई। यहाँ का-सा सुख गाँव में स्वप्न में भी नही मिलेगा। जरा धीरज से काम लो।"

जीवन के स्वर में सहानुभूति थी।

"नहीं जीवन, इन तीन-चार दिनों में इस झोंपडी में बैठी-बैठी तङ्ग आ गई हूँ। खुली हवा में साँस लेन को कहीं जगह नही। जरा बाहर जाकर खड़ी होती हूँ तो यहाँ के आदमी इस तरह घूर-घूरकर देखते हैं जैसे निगल

जाना चाहते हो। गाँव के गिरे-पड़े छप्पर के आँगन में आज कल खाट पर पड़ते ही जो नीद आती तो प्रभात मे चिड़यों का चहचहाना सुनकर ही आँखे खुलती। मालूम तक न होता, रात कब आई और कब गई। यहाँ करवट बदलते-बदलते सारी रात आँखो मे कटती है।"

जमना का गला रुँध आया। वह वहाँ से उठकर एक कोने मे चली गई और कुछ काम करने लगी।

× × ×

भारत की राजधानी दिल्ली से २५-३० कोस दूर अहीरों की एक छोटी-सी बस्ती थी। कठिनाई से कुल बीस घर होगे। सारे ग्रामवासी खेती-बाड़ी पर पलते थे। किसी को यह ज्ञात न था कि उनसे थोड़ी ही दूर पर एक ऐसा स्थान है, जहाँ से चालीस करोड़ आदमियो को गुलाम रखने का चक्र चलाया जाता है, जहाँ बड़े-बड़े बंगले, बड़ी-बड़ी कोठियाँ है और उन बड़ी-बड़ी कोठियो तथा बगलो मे बड़े-बडे आदमी बसते है।

इस छोटी-सी बस्ती का छोटा-सा किसान, बोधा, जमना का पति था। पिछले जाड़ो मे दो वर्ष के लड़के के पालन-पोषण का भार जमना पर छोड़कर वह अपने दायित्व से मुक्ति पा गया। बीसवीं वर्ष-गाँठ से पहले ही जमना विधवा हो गई।

किसी अन्य पुरुष की चूड़ियाँ पहनकर अहीर-नारी वैधव्य-दोष से छुटकारा पाने में स्वतन्त्र है और स्वेच्छा से किसी की घर-गिरस्ती की गाड़ी में जुतकर अपने को अनुगृहीत भी समझ सकती है; किन्तु जमना ने पति की मृत्यु के छः मास पश्चात् भी इस बारे में कोई विचार नहीं किया। उसने अपने पति की अमिट और बहुमूल्य निशानी अपने जीवन-धन शिशु के पालन में ध्यान लगाया।

जमना पति के राज मे सब तरह से सुखी थी। घर का काम भुगताकर वह दिन भर पति के साथ काम करती, खेत जोतती, निराती-काटती। न किसी का लेना था, और न किसी का देना।

पति की मृत्यु के पश्चात् उसका समूचा व्यक्तित्व सिमटकर उसी में केन्द्रित हो गया था, किन्तु गाँव-परगाँव के विवाहेच्छुक पुरुषों की प्रार्थना से

उसकी शान्ति भङ्ग हो जाती थी। घर, खेत खलिहान सर्वत्र उसके पति की स्मृतियाँ सजीव होकर उसके सामने खड़ी हो जाती और वह घण्टो बैठी-बैठी टप-टप आँसू टपकाती रहती।

बिना सार-सँभाल किये खेत सूख गया। फसल तक घर का भण्डार—चार-पाँच मिट्टी के मटके—अनाज से खाली हो गया। एक नई समस्या उपस्थित हो गई।

और जीवन के माँ-बाप बचपन में ही बिदा हो गये थे। वह शहर चला आया और मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह करने लगा। इतनी दूर अपनी लड़की भेजने के लिए गाँव मे कोई महापुरुष प्रस्तुत न था, अतः आयु का आधा भाग खो चुकने पर भी शास्त्रीय दृष्टि से बिना वामाङ्गी के जीवन का जीवन अधूरा ही रहा।

जीवन साल-छ. महीने मे अपने गाँव आया। उस समय गाँव भर के लोग चौपाल मे जमा होते और फिर हुक्के की गड़-गड़ाहट में जीवन से अनेक प्रश्न किये जाते। वह सर्वज्ञ की भाँति गम्भीरता से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देता। उत्तर देते समय वह शहर की रहन-सहन और अपने ठाठ का वर्णन इतना चढ़ा-बढ़ाकर करता कि सुननेवाले दङ्ग रह जाते। उसके गठीले बदन पर सफेद-सफेद कपड़े और मुँह से निकलनेवाला सिगरेट का गुलाबी धुआँ अधिक प्रभाव डालता था।

जीवन इस बार गाँव आया तो सदा की भाँति जमना से मिलने गया गाँव के प्रत्यक व्यक्ति मे परस्पर, चाहे वह किसी जाति और वर्ग का हो, कोई-न-कोई रिश्ता रहता ही है और इस स्वयसिद्ध रिश्ते से जमना जीवन की भाभी लगती थी। जमना जीवन को देखते ही, अपने पति की स्मृति से विह्वल होकर रोने लगी और जीवन उसे धैर्य बँधाने की चेष्टा करने लगा। उसने अन्त में कहा—"भाभी, तुम किसी बात से कष्ट न पाना। मुझे घर का आदमी समझना, मैं तुम्हारी सहायता के लिए सदैव तैयार रहूँगा।"

और बिना सोचे-विचारे जमना के मुँह से निकल गया—"तुम्हारी दिल्ली में मुझे कोई काम नही मिल सकेगा?"

"क्यों नही ? आज-कल काम की क्या कमी है ? शहर में काम बहुत हैं और इस पर मनचाही मजूरी लो ।"

× × ×

दिल्ली पहुँचते ही जीवन जमना के लिए अच्छी किनारी की दो सफेद साड़ियाँ ले आया । साबुन, तेल और इसी तरह की दूसरी चीजें खरीदी गईं ।

जमना ने सफेद साड़ी पहिनकर, जब अपने रूखे, मैले, धूल-भरे, बरसों के तेल से चीकट बने बालों को साबुन से साफ करके खुशबूदार तेल डालकर सँवारा और टिकली लगाकर काजल की डिबिया के पीछे लगे हुए आइने में अपना मुँह देखा तो वह स्वयं आश्चर्यचकित रह गई । उसके मन में रह-रहकर प्रश्न हो रहा था—क्या यह मेरी ही परछाईं है ?

वह रूपवती और सुन्दरी न होकर भी स्वस्थ थी और स्वास्थ्य में एक अद्भुत सौन्दर्य ओत-प्रोत रहता है ।

जमना बार-बार अपना मुँह देखती और आश्चर्य-मिश्रित आनन्द में तन्मय हो जाती ।

इसी समय उसका लड़का खेलकर बाहर से कोठरी में आया और दरवाजे से ही बड़े मधुर स्वर में पुकारने लगा—"अम्मीं, अम्मी ।"

छलाँगें मारता और किलकारी भरता ज्योंही वह अपनी माँ के पास आया तो क्षण भर स्तब्ध खड़ा रहा और फिर उल्टे पाँवों दरवाजे की ओर दौड़ा । दरवाजे पर वह जोर-जोर से माँ-माँ चिल्लाने लगा ।

जमना दरवाजे पर आई । उसने उसे गोद में लेने के लिए ज्योंही हाथ बढ़ाये, वह दूर भाग गया और चकित नेत्रों से उसे ताकने लगा, जैसे वह कोई अपरिचित हो ।

पहले दिन उसमें नगर के प्रति जो उत्सुकता दिखाई दी थी, वह धीरे-धीरे विलीन हो गई ।

रात आधी से अधिक बीत चली थी, किन्तु जीवन की आँखों में नींद न थी ।

वह घर के दरवाजे से सटकर बाहर गुदड़ी पर लेटा-लेटा तारे गिन रहा था। उधर अन्दर जमना भी अब तक नही सोई थी।

"अभी सोई नही, जमना भाभी ?"

"हाँ, क्या तुम्हें भी अब तक नींद नही आई ?"

"नहीं, मैं एक नीद ले चुका हूँ।"

यह कहकर जीवन जमना के बिछौने पर आ बैठा। जमना भी बैठ गई। घर में अँधेरा छाया था, अतः दोनों एक दूसरे की आकृति को साफ-साफ नही देख पाते थे।

"तुमने अब तक मेरे लिए कोई काम नही देखा ?"

कुछ देर बाद निस्तब्धता भङ्ग हुई।

"तुम काम की कोई चिन्ता न करो, भाभी ! मैं कमाकर लाऊँगा, तुम घर बैठी खाओ। मेरे कौन बैठा है ?"

"नहीं, यह नहीं होने का। मै यहाँ निठल्ली बैठकर खाने नही आई हूँ। बैठे-बैठे हाथ-पॉव सुन्न पड़ गये हैं। कोई काम मिले तो मन भी लगे और हाथ पाँवों में जान भी आये। और मै तुम पर दो-दो प्राणियों का बोझ भी नहीं डालना चाहती।"

"यह कैसी बातें करती हो, भाभी ! मै क्या कोई पराया हूँ ? पराया होता तो मै तुम्हे लाता ही क्यो ? अगर तुम मेरा घर सँभाल लो तो मेरी जिन्दगी सुधर जायगी।"

जीवन चुप हो गया। जमना ने कोई उत्तर नहीं दिया जैसे वह किसी गहरी चिन्ता में डूब गई हो।

कुछ देर के लिए कोठरी में सन्नाटा छा गया।

"भाभी, क्या सोच रही हो ?" कहकर जीवन ने जमना का हाथ अपने हाथ में लेकर जोर से दबाया—"बोलो भाभी, तैयार हो ?"

जमना के रोम-रोम में बिजली दौड़ गई। उसने कोई उत्तर नही दिया।

जीवन ने उत्तर न पाकर उसकी ओर अपना बायाँ हाथ बढ़ाया ही था कि पास में लेटा हुआ जमना का लड़का हड़बड़ाकर खड़ा हो गया। उसके मुँह से

ऐसी चीख निकली, जिससे जमना और जीवन दोनों ही हक्के-बक्के से रह गये। जमना ने उसे अपनी गोद में लिटा लिया। लड़का थर-थर काँप रहा था। उस कम्पन का स्पर्श पाकर जमना का हृदय धक-धक करने लगा। जीवन उठकर अपने बिस्तर पर आ गया।

लड़का अभी कुछ स्वस्थ हो पाया था कि जमना को प्रतीत हुआ, जैसे एक छाया उसकी ओर आ रही हो। वह छाया उसके सामने आकर खड़ी हो गई और उसके लम्बे-लम्बे हाथ लडके की छाती पर आकर रुक गये। जमना को सुनाई दिया—"जमना, मेरी निशानी मुझे लौटा दे; मैं इसे सुरक्षित रखूँगा।"

दूसरे क्षण छाया विलीन हो गई।

जमना इतना घबरा गई थी कि उसके कण्ठ से आवाज तक न निकली। वह जीवन को पुकारना चाहती थी, किन्तु पुकार न सकी।

× × × ×

दूसरे दिन जमना अपने लड़के को लेकर सड़क पर काम करने चली गई। सड़क नगर से बाहर डेढ़-दो मील पर, एक ठेकेदार की ओर से बनाई जा रही थी।

उस दिन प्रातःकाल जमना की आँखें कुछ देर से खुली। तब तक जीवन काम पर चला गया था।

जब से जमना यहाँ आई, उसकी पहचान पड़ोस की केवल एक स्त्री से हुई। उस स्त्री का पति ठेकेदार की ओर से सड़क पर मजदूरों की देख-रेख करता था। जमना प्रातःकाल उठते ही उस पड़ोसिन के पास गई और उसने अपने पति से कहकर उसे काम दिला दिया। मजदूरों के लिए सड़क के किनारे बनी हुई स्थायी झोंपड़ियों में से उसे रहने के लिए एक झोंपड़ी मिल गई।

जमना टोकरे में पत्थर भर-भरकर कारीगरों को पकड़ा रही थी। लडका एक-दो फेरों में उसके साथ रहा, लेकिन फिर वह थककर सड़क के एक किनारे बैठकर अपनी माँ का आना-जाना देखने लगा। जमना जब उसके पास से निकलती तो लड़के की आँखें दमकने लगती, वह टुकुर-टुकुर देखने लगता और हँस देता। जमना के मुँह पर भी फीकी-सी मुसकान दौड़ जाती। माँ

के आगे निकल जाने पर लड़का उदास हो जाता। जमना की छाती फटने लगती। पास पहुँचकर जमना की प्रबल इच्छा होती, वह लड़के को उठाकर अपनी छाती से लगाकर उसका मुँह चूम ले। लेकिन इस डर से कि कोई उससे कुछ कह न दे, अपना मन मारे काम करती रही। दूसरे मजदूर धीरे-धीरे काम कर रहे थे; किन्तु वह इसकी अभ्यस्त न थी। परिणाम यह हुआ कि वह दोपहर होते-न-होते थक गई।

धूप तेज हो चली थी। लड़का चद्दर बिछाकर एक वृक्ष के नीचे सो गया। जमना ने उसे चादर का एक छोर उढ़ा दिया।

राम-राम करके सन्ध्या हुई। मजूरी बँटने लगी। जमना न हाथ बढ़ाया तो मजूरी देनवाले ने कहा—"तेरे पास चार आने है ?"

"नही।"

"तो फिर तुझे बारह आने के पैसे कैसे दूँ ? लो तुम चारों को तीन रुपए दिये देता हूँ। आपस मे बाँट लेना।"

जमना अपने अन्य तीन साथियों के साथ जब झोपड़ियों के निकट पहुँची, उसने बड़ी विनम्रता से कहा—"भाई, मुझे पैसे की बड़ी जरूरत है। अगर तुम्हारे पास खुले पैसे हो तो दे दो। बड़ी कृपा होगी।"

"रेजगारी हमारे पास भी नही है। कल दिन निकले शहर में सौदा लेने जाएँगे तब पैसे मिलेंगे।"

"तो मुझे रुपया दे दो, मै अभी सौदा लाकर तुम्हारी चवन्नी लौटाए देती हूँ।"

"बड़ी आई चवन्नी लौटानेवाली !" एक साथी ने उस पर अविश्वास की दृष्टि डालते हुए कहा—"हम कही भागे नही जा रहे है।"

"भागी तो मै भी नहीं जा रही हूँ।" जमना को क्रोध आ गया। उसने क्रुद्ध स्वर मे कहा—"अगर तुम मेरा चवन्नी का भरोसा नही करते तो मै तुम्हारा बारह आने के लिए क्यों करूँ ?"

"यहाँ तुम्हारे पाँव कौन पड़ने गया था कि तुम हमारा भरोसा करो ?"

उसने बड़ी उद्दण्डता के साथ उत्तर दिया और वह अपने अन्य साथियो के साथ अपनी झोपड़ी मे चला गया ।

जमना जब अपनी कोठरी मे पहुँची तो उसके रोम-रोम में ज्वाला जल रही थी । उसके हृदय को रह-रहकर यही विचार व्यथित कर रहा था—क्या मेरा मूल्य चार आना भी नही है, जो मुझ पर इतने के लिए भी विश्वास नही किया गया ।

उसने लड़के को गुदड़ी पर लिटा दिया ।

उसके हृदय मे उसकी इस विवशता ने आग-सी धधका दी कि वह अपने कलेजे के टुकड़े को रोटी का एक टुकडा नही खिला सकती, छटॉक दूध नही पिला सकती, दिन भर खून पसीना एक करके भी वह अपना पेट नही भर सकी और यह कि उसके पास झोपडी मे मिट्टी का दिया लगाने के लिए भी दो पैसे नही हैं ।

आकाश मे तारे छिटक गये थे । लड़का गुदड़ी पर चुपचाप लेटा रहा । उसने न रोटी मॉगी न पानी मॉगा । जमना ने थोड़ी देर बाद ज्योंही दुलार से उसके माथे पर हाथ रक्खा तो माथा तवे की तरह दहक रहा था । जमना चौंक गई ।

उसने बड़े करुण स्वर से कहा—"मेरे राजा बेटा, उठो, पानी पी लो तुम्हारे लिए मै दूध लाती हूँ, उठो बेटे ! भूखे मत सोओ ।"

किन्तु लड़के ने ऑख तक न खोली । वह उसी तरह चुपचाप पड़ा रहा ।

जमना करे तो क्या करे ? उसने सोचा, जीवन के पास चली चले; किन्तु इतनी रात गये वह वहाँ कैसे जाये ? और फिर इतने जोर के बुखार में अगर लड़के को कही हवा लग गई तो क्या होगा !

जमना की इच्छा थी—लड़का किसी तरह ऑखें खोले । वह उसे देखे । अगर वह रोने भी लगता तो भी उसे सन्तोष होता । वह रात भर उसी तरह बैठी रही

प्रातःकाल एक मजदूर उसे कल की मजदूरी की तीन चवन्नियाँ दे गया । उसने निश्चय किया, पहले कही से दूध लाकर लड़के को पिला दूँ, शायद भूख

से इसे चेत न हो रहा हो। उसके बाद कुछ सोचा जायगा। मील भर दूर से जमना अपनी छोटी-सी लुटिया में दूध भरकर लौटी। उसने झोपडी मे जाकर देखा, लड़के की आँखें कुछ खुली है और साँस धीरे-धीरे चल रही है। उसने हर्ष विभोर होकर हाथ जोड़कर भगवान् को धन्यवाद दिया। उसने लड़के के पाँव छुए, वे बरफ की भाँति ठण्डे पड़े थे।

लड़के के हाथ-पाँव काँपे और गर्दन नीचे ढुलक गई; मानो वह उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था।

जमना की आँखो में आँसू नही थे। उस मृत बालक को गोद मे लिये वह दौड़ी जा रही थी। वह नगर से दूर, बहुत दूर आ गई थी। आकाश में बीचोबीच सूरज चमक रहा था। जमना के शरीर से पसीने की धार बँधी थी। बाल खुल-कर चारों ओर फैल गये थे। झाड़ियों मे उलझकर उसकी साड़ी तिक्के-तिक्के हो गई थी, लेकिन वह रुकने का नाम नही ले रही थी। उसने एक हाथ से लड़के के शव को छाती से चिपका रखा था और उसके दूसरे हाथ में दूध की लुटिया थी। वह चली जा रही थी।

लड़के के हाथ-पाँव ऐंठकर लकड़ी बन गये थे; वे हिलते-डुलते नहीं थे। लड़के का मुँह सफेद हो गया था, जैसे किसी ने उसके शरीर का रत्ती-रत्ती खून पी लिया हो।

जमना सहसा खड़ी हो गयी। उसने लड़के को एक ओर लिटा दिया और वह स्वयं गढ़ा खोदने लगी। गढ़े में लड़के का शव रख दिया। फिर लड़के के खुले मुँह मे लुटिया का दूध डालते हुए कहा—"मेरे राजा बेटा, दूध पीते जाओ, भूख लगी होगी। मारे भूख के चल न सकोगे। कल कुछ खिला न सकी, आज तो पेट भर दूध पी लो।"

दूध इधर-उधर से बह निकला। दूध की सफेद-सफेद बूँदे आँख, नाक और माथे पर फैलकर सूर्य की किरणों मे चमकने लगी।

"और ये पैसे लो। बस मेरे पास यही है। काम पड़ने पर खर्च करना। अच्छी तरह से रहना।"

यह कहकर जमना ने अपनी गाँठ से दो चवन्नियाँ निकालकर लड़के की कमीज की जेब मे रख दी।

और वह स्वयं उठकर पहले की अपेक्षा अधिक वेग से दौड़ने लगी।

मारे धूप के पृथ्वी और आकाश तप रहे थे। वह बिल्कुल सीधी, झाड़ियो को फाँदती, खेतो को लाँघती, और पौधो को रौदती चली जा रही थी।

कहाँ ?

वह सम्भवत: किसी दूर देश को जा रही थी और उसके पास इतना समय नही था कि वह दुनिया को अपनी मञ्जिल का पता बता सके।

अभाव की पूर्ति

प्रायः अवकाश के दिनों मे मै अपने मित्र के यहाँ चला जाता हूँ। मित्र शहर में वकालत करते है। वकीलो में उनका अच्छा मान है। थोडे समय में उन्होंने अपने व्यवसाय मे काफी पैसा कमाया है और पैसे के साथ-साथ यश भी। मित्र और उनकी पत्नी का स्वँभाव बहुत अच्छा है, दोनों ही हँसमुख और मिलनसार। मित्र के एक लड़का और एक लडकी है। लड़का अभी पाँच साल का होगा और लडकी ढाई-तीन साल की। लडकी रुक-रुककर फूटे-टूटे शब्द बोलने लगी है और अकसर दो-चार शब्दो को ही दुहराया करती है। सब की देखा-देखी भाई-बहन जब अपने पिता को पिताजी न कहकर वकील साहब कहते है, तब सुननेवालो का अच्छा मनोरंजन हो जाता है। इस परिवार के साथ दिन बड़े आनन्द मे बीत जाते है।

किन्तु इस बार मेरा मन वहाँ एक विचित्र गुत्थी को सुलझाने में लगा रहा। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, यह गुत्थी सुलझने के बजाय ज्यादा-ज्यादा उलझती गई है। यहाँ तक की छुट्टियाँ बीत गईं और मैं उसकी स्मृति को साथ लिये घर लौट आया। समय-असमय उसकी सुधि से मन कुछ क्षणों के लिए उलझ जाता है, घण्टों बीत जाते है, लेकिन सफलता नही मिलती।

पहली बार देखकर मै निश्चय न कर सका कि इस परिवार मे इस स्त्री का क्या स्थान है। उसके स्वतन्त्र और आत्मीयतापूर्ण बर्ताव को देखकर निस्सन्देह समझा जा सकता था कि यह वकील साहब के निकट-सम्बन्धियों मे से कोई होनी चाहिए। किन्तु इससे पहले मैंने उसे इस घर मे नही देखा था। मित्र के सभी सम्बन्धियो से मै परिचित था। इसके अतिरिक्त इस युवती के बारे में उन्होने कभी कुछ कहा भी नही था।

इस बार, जिस दिन से मै यहाँ पहुँचा हूँ, उसी दिन से मेरे मन में इस युवती के बारे मे कुछ जानने का कौतूहल रहा है। वकील साहब कही बाहर गये थे, उनकी पत्नी से मेरा परिचय पाकर मेरे ठहराने का प्रबन्ध उसी ने किया था। जब उसने मेरा सामान घर मे रख दिया और मे भी आफिस में कुर्सी पर बैठ

गया, तब शिष्टाचार के नाते कुछ बात करने के लिए मैंने उस युवती से यों ही प्रश्न किया—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम ? मुझे सब लोग बेबी कहते है !"

और वह खिलखिलाकर हँस दी। उसे अपने उत्तर पर आश्चर्य हुआ या आनन्द, मै निश्चय नही कर सका।

एक पच्चीस-छब्बीस वर्ष की स्त्री को 'बेबी' रूप मे देखकर मै भी अपनी हँसी न रोक सका। मैंने हँसते हुए कहा—

"लोग तुम्हे बेबी कहते है, लेकिन यह तो बताओ, तुम स्वयं अपने आपको क्या कहती हो ?"

मेरा प्रश्न समाप्त नही हुआ था कि सहसा उसकी हँसी गायब हो गई और उसका स्थान गम्भीरता ने ले लिया।

"अपने आपको मै क्या कहूँ ? क्या बेबी नाम अच्छा नही है ?"

"इतनी बड़ी बेबी किसे बुरी लगेगी ?"

"अरे, आप तो दूसरा अर्थ समझ लिया ! साहब लोगों के यहाँ बड़े-बड़े आदमी भी बाय नही कहलाते ? उसी तरह मै इस घर की बेबी हूँ !"

उसने हँसने का असफल प्रयास किया।

इसी क्षण से मैं उसके बारे मे सोचने लगा हूँ। जल्दी ही मै इस निर्णय पर पहुँच गया कि इस युवती का वास्तविक नाम कुछ भी हो, किन्तु किसी ने बेबी नाम खूब सोच-समझकर रखा है। सम्भवतः वास्तविक नाम इतना यथार्थ नही होगा, जितना यह बेबी नाम उसके लिए उपयुक्त लगता है। शायद इसी लिए उसने अपने नाम के बजाय इस नाम को अपना लिया है। हाँ, यह बात स्पष्ट थी कि बेबी जिस अर्थ में अपने को बेबी समझती थी, मेरी दृष्टि मे उसका कोई महत्त्व नही था।

वह इतनी बड़ी हो चुकी थी, लेकिन किसी बात पर टिकना जानती ही नही थी। पच्चीस वर्ष को अवस्था में स्त्री काफी प्रौढ़ हो जाती है, किन्तु उसे देखकर ज्ञात होता था, जहाँ समय ने उसके शरीर पर प्रभाव डाला है, वहाँ

उसके मन और आत्मा को वह छू भी नही पाया है । मानव-मन पर काल अपने जिन चिह्नों को छोड़ जाता है, वे उसमे कही दिखाई नही देते थे । उसकी आकृति पर अनुभूतियाँ अंकित न थी और न भविष्य की कोई आकांक्षा या आशा की झलक ही दिखाई देती थी। वकील साहब के बच्चों के साथ खेलते समय वह भी बालिका दिखाई देती । जरा-सी सफलता पर वह खुशी के मारे फूल उठती, उछलती, कूदती और यदि कोई उसे जरा जोर से कोई बात कह दे, तो वह आतङ्कित होकर कॉपने लगती । किन्तु यह कम्पन और प्रसन्नता आकाश मे उड़नेवाले मेघ खण्डों की छाया के समान अस्थिर होती । मित्र की पत्नी कारणवश उसे कभी झिड़क देती तो वह क्षण भर स्तब्ध दिखाई देती और फिर हँसते-हँसते उन्हे खुश करने का प्रयत्न करती । आकृति पर कोई भाव स्थिर न रहता, उसी तरह जैसे पानी पर खीची गई लकीर अपनी उत्पत्ति के साथ-साथ लय का निर्माण भी करती है । यथार्थ और अयथार्थ को पृथक् करना सम्भव नही था । सड़क पर बारात या और किसी सम्बन्ध में बजने वाले बाजे, ताशे या सँपेरे की बीन, मदारी की डुगडुगी और जादूगर की आवाज कान पर पड़ते ही वह अपने सारे काम छोड़कर दरवाजे पर आ खड़ी होती और इन सब चीजों को इतनी तन्मयता से निहारती जैसे वह इन सबको पहली बार देख रही है । घर लौटकर एक-एक को देखी हुई चीजो का विस्तृत विवरण सुनाती । कभी उसके ओठों पर बालकों जैसी पवित्र हँसी नाच उठती; कभी अकारण ही उदासी और बेबसी की मूर्ति दिखाई देती वह ! पच्चीस वर्ष, एक लम्बा-चौड़ा युग आया और चला गया । अपने बाह्य को वह समय के प्रभाव से नही बचा सकी, किन्तु उसका अन्तःकरण समय और परिस्थितियों की पहुँच से परे रहा है ।

घर मे किसी अपरिचित व्यक्ति के आने पर भी उससे इस तरह हँस-हँसकर बात करती, जैसे वह उसे बहुत दिनों से जानती है । उसके मुख पर स्वाभाविक प्रसन्नता झलकती । उसके भावों से इस बात का संकेत भी नही मिलता था कि उसके अतीत का कोई अंश वेदनापूण रहा होगा ।

मेरी व्यवस्था का सारा भार उसी पर था । मै जल्दी उठने का अभ्यस्त

हूँ । जब मेरी आँख खुलती, तब तक वह स्नानादि से निवृत्त होकर काम में लग जाती थी । बालकों को नहलाने, कपडे पहनाने से लेकर घर का पूरा काम वही करती थी । मित्र की पत्नी केवल भोजन बना देती; प्रातःकाल नल में पानी कम आता था, इसलिए वह रात को सात बजे से नौ बजे तक पानी भरती, फिर बरतन माँजती, उसके बाद कपडे धोने का नम्बर आता । इस तरह मैंने उसे भोर होने से पहले, चार बजे से रात को ११-१२ बजे तक काम करते देखा था, फिर भी वह कभी उदास या थकी दिखाई न दी । वह काम करने के लिए बहाने निकालती । उसकी इस सहिष्णुता से मेरे हृदय में उसके प्रति आदर में वृद्धि हुई, साथ ही मै अपने मित्र और उनकी पत्नी के बारे में सोचता—ये लोग अब कितने कठोर बनते जा रहे हैं ! बेचारी से कितना काम लिया जाता है !

एक दिन मित्र से मालूम हुआ, वह स्वयं काम में जुती रहना चाहती है । लाख मना किया जाता है, उसे झिड़कियाँ मिलती हैं, लेकिन वह दूसरे को घर के किसी काम मे हाथ नही लगाने देती । रूठ जाती है और अपना अपमान समझती है ।

मेरे काम मे वह बहुत आत्मीयता दिखाती थी । मेरे कहने से पहले ही वह प्रत्येक चीज तैयार रखती थी । उसके प्रबन्ध में कोई त्रुटि खोजने पर भी नहीं मिलती थी । उसमे स्वभाव को पहचानने की अद्‌भुत शक्ति थी और वह कभी कोई ऐसा आचरण नही करती थी, जो रुचि के अनुकल न हो । बीच-बीच में मै उससे कहता—

"बेबी तुम इतना काम क्यों करती हो ? घड़ी भर आराम क्यों नहीं करती ?"

"बाबूजी, काम करने मे ही आराम मिलता है । जब काम नही होता, तब मन भीतर ही भीतर उद्विग्न हो उठता है । मालूम होता है, दुःख का अथाह सागर उमड़ा आ रहा है ।"

जब वह बात करती है, तब उसके स्वर में मिठास होती है और आकृति पर प्रसन्नता झलकती है । लेकिन धीरे-धीरे मुझे यह भान होने लगा है, इस प्रसन्नता

के नीचे विषाद की गहरी कालिमा छिपी है। लोगो की दृटि से बचाने के लिए वह उसे इस कृत्रिम हँसी से ढँकना चाहती है, फिर भी वह कालिमा कभी-कभी दिखाई दे ही जाती है और ऐसे अवसरों पर उसकी विद्रूपता अधिक बढ़ जाती थी।

जब वह काम करती है, प्रायः कोई न कोई सिनेमा का प्रचलित गीत गुनगुनाती रहती है। उस गुनगुनाहट मे एक टीस होती है। कद अच्छा था, दुहरा बदन। अंग-अंग से स्फूर्ति, चेतना और स्वास्थ्य झलकता था। रंग गहरा काला था, किन्तु यह कृष्णता स्वास्थ्य और स्फूर्ति के कारण दृष्टि मे खटकती नही थी। आँखे छोटी-छोटी और गोल। ओठ मोटे, नीचे का ओठ अपनी मुटाई के कारण कुछ बाहर निकला हुआ था। वह प्राय सफेद साड़ी पहनती थी, छापे की पतली किनारवाली। सफेद साडी उसके काले शरीर पर अच्छी फबती थी। स्वच्छता का विशेष ध्यान रखती। कोई धब्बा या किसी तरह का मैलापन उसे सहन नही था। जब किसी काम से वह बाहर जाती, तब घंटो आइने के सामन खडी होकर बाल सँवारती, अधिक से अधिक आकर्षक बनने की चेष्टा करती। शरीर पर आभूषण के नाम पर कुछ भी नही था, हाथों में काँच की चूड्याँ भी नही थी। हाँ, बाहर जान से पहले वह कुछ फूल खरीद लाती। फूल देखकर वह बहुत प्रसन्न हाती, लेकिन ज्योंही फूल कुम्हलाने लगते वह उन्हें देखना भी पसन्द नही करती थी। इस बनाव-शृगार तथा स्वच्छता के विरुद्ध उसके घरेलू कपड़े अधिक स्वच्छ नहीं थे। जिस गुदड़ी पर वह सोया करती, वह काफी गदी थी और उसकी सफाई पर उसका बिलकुल ध्यान नही था। बाहर से लौटने पर वह अपने वेश-विन्यास मे उतनी सावधानी नही बरतती थी।

उसकी चाल में गजब की फुर्ती थी। किसी काम के कहने पर वह दौड़ दौड़कर जाती। एक क्षण का विलम्ब सहन नही था।

मेरे मन में उसके प्रति सहानुभूति बढती ही गई। यह साहनुभूति उसकी दृष्टि से भी ओझल न थी। धीरे-धीरे वह अपने यथार्थ रूप में मेरे सामने आने लगी। अब वह बात-बात पर हँसती नही थी। बातचीत में गम्भीरता से काम

लेने लगी। इस परिवर्तन से आशा होती थी, अब मै उसके अन्तःकरण तक पहुँच सकूँगा, उसका हृदय मेरे सामने अनावृत्त हो जायगा।

मेरी छुट्टियाँ बीत चली थी। मै घर लौटने की तैयारी करने लगा। एक-एक दिन टल रहा था। मित्र कोई न कोई बहाना बनाकर आज को कल पर टाल देते थे। इन दिनो उसकी आँखो मे अपनापन और विश्वास अधिकाधिक दिखाई देने लगा। दूसरे दिन प्रातःकाल की गाड़ी से मै जानेवाला था। सामान बाँध चुका था। सामान उसी ने बाँधा था। दिन भर उसे मैंने बहुत गम्भीर देखा और बार-बार मेरे पास आकर भी उसके मुँह से शब्द नही निकलता था। मुझे प्रतीत हुआ, वह कुछ बोलना चाहती है, लेकिन प्रयत्न करने पर भी उसका मुँह नही खुला।

काफी रात बीत चुकी थी और मैं उसी के सम्बन्ध में विचार कर रहा था। नीद नही आ रही थी। इसी समय उसने कमरे मे प्रवेश करते हुए कहा—

"आप अब तक क्या सोच रहे हैं ?"

"कुछ भी नही। इतने दिनो बाद तुम लोगों से बिछुड़ रहा हूँ, इसलिए नीद नही आ रही है।"

वह कुछ दूर पडे हुए थैले पर बैठ गई। कुछ देर तक वह चुप रही, मानो बोलने के लिए वह शक्ति एकत्रित करती हो।

"आपने उस दिन मेरा नाम पूछा था ?"

"हाँ। और आज भी पूछना चाहता हूँ !"

"कल आप चले जाएँगे। फिर कभी मिलना हो या न हो ! आप मेरे बारे में न जाने क्या सोचते होगे।" कुछ ठहरकर उसने कहा—"मेरा नाम है कान्ता खरे। बरसों से इस नाम का प्रयोग नही हुआ, इसलिए यह नाम मुझे स्वयं अपरिचित लगता है। मै कभी कान्ता थी, इसकी सुधि भी नहीं आती।"

उसका कण्ठ धीरे-धीरे आर्द्र हो रहा था।

"खरे ? तुम महाराष्ट्रीय ब्राह्मण मालूम होती हो ? तुम्हें इतनी अच्छी हिन्दी बोलते देख मैंने इसकी कभी सम्भावना भी नही की थी।"

उसका खरे उपनाम सुनकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अभी यह

स्थिति उत्पन्न नही हुई है कि कोई ब्राह्मण युवती किसी के यहाँ चौका-बरतन करने को विवश हो । रूप-रंग से वह ब्राह्मणी नही लगती थी ।

"नही, मै ब्राह्मणी नही हूँ ।"

"फिर, यह खरे नाम क्यों पड़ा ?"

"यह भी बताती हूँ । मै आपको अपनी पूरी कहानी ही सुनाये देती हूँ । उस समय मै मुश्किल से ६-७ वर्ष की थी । तीन-चार मास के अन्तर से माता-पिता दोनों ही चल बसे । उनकी स्मृति बहुत धुँधली है । मेरे हृदय मे उनके जिस रूप की कल्पना है, वह बहुत कुछ सुनी-सुनाई बातों और कल्पना पर आधारित है । हमारा कोई निकट-सम्बन्धी नही था । मै बिलकुल निराश्रित थी । इसी समय मुझे हमारे पड़ोस मे रहनेवाले एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आश्रय दिया । ससार मे मैंने अनेक व्यक्तियों को देखा है, लेकिन उन जैसा धर्मात्मा पुरुष आज तक मुझे नही मिला ।"

वह श्रद्धा से विभोर हो उठी और उसकी आँखें चमकने लगी ।

"उन्होंने अपनी सन्तान की तरह मेरा पालन-पोषण किया । उनके इस उपकार से मै कितनी दबी हुई हूँ, बता नही सकती । मै भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थी । जब समय मिलता, तब वे मुझे बड़े प्रेम से पढ़ाते भी थे । मैंने कभी अनुभव नही किया कि मैं उस घर मे पराई हूँ । यहाँ तक कि किसी के पूछने पर उनके बच्चो की तरह अपने आपको 'खरे' कहती थी और पिता के नाम की जगह उनका नाम ही बतलाती । आज भी अपने नाम के आगे 'खरे' शब्द लगाते हुए मुझे आनन्द होता है ।

"कितना अच्छा होता, मै जीवन भर उनकी सेवा कर सकती । मेरे मन में इसकी बड़ी साध थी । लेकिन ज्योंही मै १५ वर्ष की हुई कि वे मेरे लिए वर की खोज करने लगे । बड़ी दौड़-धूप के बाद इस नगर में ही उन्हे वर मिल गया । वे मिल मे काम करते है । वे मेरी जाति के थे । अपने परिवार म वे अकेले ही थे । बड़ी खुशी से वे विवाह के लिए तैयार हो गये । मैंने पिताजी से — मै अपने पालक को इसी नाते से सम्बोधित करती थी और उन्हें अपना पिता

मानती भी थी—अनुरोध किया कि मै आप की सेवा में अपना जीवन बिताना चाहती हूँ, पर उन्होंने मुझे समझा-बुझाकर विवाह के लिए तैयार कर लिया।

"मै पत्नी के रूप मे कुल डेढ़ वर्ष रही। इस अवधि मे मै एक घर की मालकिन थी। किन्तु इस थोड़े से समय ने मेरे जीवन को इस तरह ढँक लिया है कि अब जीवन मुझे ग्रामोफोन की उस चूडी जैसा लगता है, जिसमें गत का प्रत्येक अक्षर अंकित है और जो हर बार उन्ही निश्चित स्वरो को व्यक्त कर देता है। मै अब अपने जीवन मे कोई स्वतन्त्र और स्वच्छन्द आलाप या स्वर नही सुनती। मेरे पति स्वभाव से मेहनती है। उनमे कोई दुर्गुण या व्यसन भी नही है, फिर भी न जाने क्यों उनके निकट मुझे एक प्रकार का भय-सा लगता था और मैं हर समय उनके सम्मुख सावधानी से जाया करती। प्रात.काल मिल की सीटी बजते ही वे जल्दी-जल्दी काम पर चले जाते। उनका प्रत्येक कार्य समय से बँधा था। मुझे वे कारखाने की मशीन के एक पुर्जे मालूम होते थे। उनकी अपनी कोई सत्ता नही थी। मै उनके घर की मालकिन थी, लेकिन उनका अपना कुछ न थी। उनकी मालकिन तो वह मिल या कारखाना था, जिसकी सीटी सुनकर वे उसकी ओर तेजी से खिचे चले जाते थे। मै उनकी आत्मा मे समा नही सकी।

"विवाह के वर्ष भर बाद मुझे एक लड़का हुआ। मेरी उद्विग्नता न जाने कहाँ चली गई। मुझे सन्तोष हुआ, मेरा कोई है। उस छोटे से मांस-पिण्ड को जिसमे कोई क्रिया न थी, आँखे केवल टिमटिमाती थी, किन्तु किसी पर स्थिर नही होती थी, उसके किसी अंग से भी ममत्व या ज्ञानपूर्ण संकेत नही मिलता था, फिर भी मेरे लिए वह वाणी का पुञ्ज और चेतना का स्रोत था। एक योगी की तरह मै उस मास-पिण्ड को चैतन्य और शक्तिमान बनाने की साधना में लगी हुई थी। प्रत्येक क्षण उसी के लिए कटता था। पति के प्रति भी अब मुझमे पहलेवाला विराग न था। वे मुझे कुछ निकट दिखाई दिये। जो समय मिलता, हम दोनो काफी घुल-म्लिकर बातें करते। भविष्य के सम्बन्ध में अपने उस शिशु को लेकर हम दोनो भव्य स्वप्न देखा करते। हम दोनों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक साधन मिल गया था।

"किन्तु यह सुख स्थायी न रह सका। बरसात के दिन थे। आकाश में बादल

घिरे हुए थे। एकाएक उस लडके की साँस जल्दी-जल्दी चलने लगी। कुछ खाँसी का ठसका भी था। उनके काम से लौटने तक वह बहुत उदास हो चुका था और प्रातःकाल हम दोनो को रोता हुआ छोड़ कर वह चला गया।"

कुछ देर के लिए वह फिर रुकी। इधर-उधर देखने लगी। उसकी आँखो मे आँसू छलक रहे थे। मै भी अपने दुःख को न रोक सका। मैंने कहा—"बेबी, तुम्हें जीवन में कितनी वेदना मिली है!"

इस सहानुभूति से उमड़नेवाले बादल बरस पड़े।

कुछ देर बाद उसने आर्द्र स्वर में कहा—"अब मेरा कुछ न था। रात आँखो में कटती। अपने बगल मे बच्चे की जगह खाली देखकर मुझे लगता जैसे हृदय अभी फट जायेगा, मेरी नसो में रक्त जम गया है। मेरे पति में प्रकट रूप से कोई परिवर्तन दिखाई नही देता था, कभी बच्चे के बारे मे वे बात भी नहीं निकालते थे। समय पर काम करने जाते। उनमे पिछले दिनों जो आत्मीयता और कोमल भाव उभर आये थे, वे फिर विलीन हो गये। उनका जीवन पहले से अधिक रूखा दिखाई देता था। सायंकाल घर लौट कर भोजन करते ही सो जाते। मैं कुछ बात करना चाहती तब भी वे अपने आपको थका बताकर टालने की कोशिश करते। लगता था, जैसे वे मुझसे बचना चाहते थे। यदि मैं कुछ अधिक प्रयत्न करती तो वे झल्ला जाते थे। अड़ोस-पड़ोस और परिचितों को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे। किसी पर उन्हें भरोसा नहीं रहा था।

"मुझे इस समय अपने पालक पिता की याद बराबर सताती थी। इस स्थिति मे उनकी स्मृति ही मुझे कुछ सन्तोष देती थी। इच्छा होती, कुछ दिन वहाँ रह आऊँ; लेकिन पति को इस अवस्था में छोड़ना भी उचित नही लगता था। जब-जब मै पिता जी के बारे में चर्चा छेड़ती, वे कुछ उदास दिखाई देते और कभी-कभी उन बातों के प्रति अपनी उपेक्षा भी प्रकट करते। यह उपेक्षा मुझे सबसे अधिक असह्य होती। एक दिन मैंने डरते-डरते उनसे पूछा, "यदि आप आज्ञा दे तो मै कुछ दिनो के लिए वहाँ हो आऊँ ?"

"कुछ दिनों के लिए क्यों? तुम चाहो तो हमेशा के लिए वहाँ जा सकती हो ?"

"इस छोटे से वाक्य ने मेरे हृदय में कितना गहरा प्रहार किया था! मेरे प्रति उनमें कितनी विरक्ति थी! मैं इस प्रहार को पूरी तरह सह नही सकी थी कि उन्होंने मेरे पिताजी के सम्बन्ध मे ऐसी बाते कहनी शुरू की, जिन्हे याद करके आज भी मुझे असह्य वेदना होती है और जिन्हे मै अपने मुँह से कह नही सकती।

"मै अब उस घर मे नही रह सकती थी। यहाँ आ गई। पिताजी से मिलना चाहती थी। उनके पास कुछ दिन रहने की बडी इच्छा थी, लेकिन पति के आक्षेपों को सुनकर मै वहाँ जाना उचित नही समझती थी। वकील साहब से पहले का कुछ परिचय था। इन्होने मेरे नाम से डाकखाने मे खाता खोल दिया है। हर मास पन्द्रह रुपये मासिक जमा कर देते है। भोजन वस्त्र यहाँ मिल जाता है।

"दो-तीन मास बाद मेरे पति मुझे लिवाने के लिए आये थे। इन दिनो उनका आग्रह अधिक बढ़ गया। मुझे उनसे बात करने की इच्छा भी नही होती। कभी-कभी यहाँ भोजन भी कर जाते है। वकील साहब से एक दिन उलझ पड़े थे।

"रात बहुत बीत गई। अब मै चलती हूँ। सो जाइए। कभी याद कर लेना।"

जब वह उठी तो कुछ खोई-खोई-सी लगती थी, साथ ही आकृति से लगता था जैसे उसका भार कुछ हलका हो गया है।

प्रातःकाल वकील साहब स्टेशन पर मुझे छोड़ने गये। मैंने रास्ते में कहा—"आपकी इस बेबी का जीवन भी बड़ा विचित्र है।"

"अरे, उसका विचार न करिए। वह तो आधी पागल है?"

उन्होंने कुछ अधिक जानकारी पाये बिना ही अपना मत व्यक्त किया।

रोग और उपचार

जिस वर्ष मेरा विवाह हुआ, उसी साल श्रीमती जी की बड़ी बहिन के पति ने डाक्टरी पास की। उन्होने मेडिकल कॉलेज मे ऐसे अनेक डाक्टरों की कहानियाँ सुनी थी, जिन्होने साधारण मेज़-कुर्सी और आलमारी लगा कर दवाखाना शुरू किया था और कुछ ही समय मे नगर के नामी डाक्टर बन गये थे; दूर-दूर तक कीर्ति फैली, हजारों को अच्छा किया, लाखों की सम्पत्ति कमाई। उन कहानियों से आकर्षित होकर र साहब ने विद्यार्थी अवस्था में ही सरकारी नौकरी न करके स्वतंत्र प्रेक्टिस करने का निश्चय कर लिया था। उपाधि-सहित नाम का साईन बोर्ड राष्ट्र-लिपि हिन्दी और अन्तरराष्ट्रीय लिपि रोमन के बड़े-बड़े अक्षरो मे लिखा गया था। फर्नीचर बुरा नही था। डाक्टर साहब प्रातः छ. बजे दवाखाने पहुँचते और बारह बजे घर लौट कर भोजन करते। प्रातःकाल का नाश्ता दवाखाने मे होता। उनका विश्वास था कि बिमारी का कोई समय निश्चित् नही, न जाने कब किसी को उनकी आवश्यकता हो जाय। वर्ष भर इस विश्वास और लगन में कोई त्रुटि उपस्थित नही हुई। इतनी तपस्या के पश्चात् भी यदि मोहल्ले वालों ने अपनी बिमारी का इलाज कराने के लिए डाक्टर साहब की शरण नही ली तो इसमे खोज करने पर भी किसी को उनका कोई दोष नही दिखाई दिया।

नौकरी के लिए आवेदन-पत्र गया। सरकार को गाँवो मे भेजने के लिए सुयोग्य डाक्टरों की आवश्यकता है। जल्दी ही बिना किसी, सिफारिश या रिश्वत के उनकी नियुक्ति एक तहसील मे हो गई। अपने प्रिय-जनो और प्रिय-जनो से अधिक प्रिय नागरिक सभ्यता के बिछोह का दु.ख था किन्तु बेकारी के दुःख के मुकाबले में यह वियोग असह्य प्रतीत नही हुआ। कुछ दिन बाद श्रीमती जी की बड़ी बहन उनके पास चली गई, और इस तरह डाक्टर साहब उस गाँव मे अस्थायी तौर पर बस गये।

उनके हर पत्र में वहाँ की शिकायत रहती थी। यहाँ का वातावरण अनुकूल नही। लोग अशिक्षित, न खेलने को क्लब, न दिल-बहलाव के लिए

सिनेमा। संगीत और नेताओं के भाषण स्वप्न की वस्तु बन गये है। बिजली नहीं जो रेडियो से मनोरंजन हो जाय। कुछ दिन बाद बैट्री खरीद कर रेडियो लगाऊँगा। प्रिय-जनो का मुँह देखने को नही मिलता। कालापानी ह। प्रत्येक पत्र मे वहाँ आकर आतिथ्य-ग्रहण करने का आग्रह तो रहता ही था।

प्रेमचन्द जी के साहित्य के पढ़ने से उत्कट इच्छा थी, एक बार गाँव की वास्तविक स्थिति देखने की।

वह गॉव ग्राण्ड ट्रक रोड के किनारे बसा है। होने को तो वहॉ केवल तहसील और मुसिफी ही है किन्तु गॉव ऐसे स्थान पर है कि आसपास गाँव वाले अपना अनाज वही बेचते है और आवश्यकता की सामग्री वही से खरीदते है। शहरवालों के लिए वह भले ही गॉव हो लेकिन आसपास के खेड़ो और नँगलो के लिए वह शहर था।

दवाखाना गाँव से बाहर बिल्कुल सड़क से लगकर था। सडक के दोनों ओर वृक्षों की कतार मीलो तक जा कर दूर क्षितिज मे एक काली-सी रेखा खीचती हुई विलीन हो गई थी। दवाखाने का घेरा काफी लम्बा-चौड़ा है। शहरों की तरह वहॉ जमीन की कोई कमी नही। एक हॉल मे बीस पलंग है, किन्तु वहाँ हमेशा ३५-४० बीमार रखे जाते हैं। पलंगों से बचे हुए, रोगियों के बिस्तर जमीन पर रहते हैं। उस हॉल से पीछे एक दरवाजा पार करके डाक्टर साहब के घर मे पहुँचा जाता है। खुला और अच्छा है। सरकारी नौकरो और मालियो के होते सफाई और हरियाली में कोई कमी नही थी। कुएँ की मुड़ेर ऊँची और चुनी हुई थी। पास ही एक चूने-पत्थर की बड़ी टंकी थी। पानी उस टंकी मे जमा होता था और वहाँ से डाक्टर साहब के घर और औषधालय में लोहे का पम्प लगा कर पानी पहुँचाने की व्यवस्था की गई थी।

दवाखाने के पिछले हिस्से मे बिल्कुल दीवार से सटी हुई एक बड़बेरी थी। नन्हे-नन्हे पत्तों से लदी, जिससे उसके कॉटे या दुबली-पतली डगाली नही दिखाई देती थीं। कहीं-कहीं उन हरे-भरे पत्तो और हरे बेरो के बीच दो-एक गदराये हुए बेर हवा के झोकों के साथ मस्ती से झूल रहे थे। उन गदराये बेरो की भीनी-भीनी सुगन्ध दूर तक फैल रही थी। मै वहॉ गया और खोज कर एक

बेर खाने लगा। क्या रंग में और क्या रस में बेर काश्मीरी सेब से कम स्वादिष्ट न थे। और अपने हाथ से तोड़ कर तत्काल ताजा बेर खाने का आनन्द ही निराला था। मैंने इससे ही अपनी यात्रा सफल समझी। मै यह आनन्द लूट रहा था कि डाक्टर साहब ने पीछे से अचानक मेरा हाथ थाम कर आश्चर्य से कहा—"क्या कर रहे है आप ? हाथ मे काँटा लग गया तो नाहक परेशानी होगी। आप चलकर भीतर बै ि ए। यदि बेर खाने पर मन चल गया है तो मैं अभी नौकर से कहे देता हूँ, आप जी भर खाइए और जब घर जायँ तो गाड़ी भर साथ ले जायें।"

"अपनी असमर्थता को यहाँ से बिदा होते समय परख लेंगे।" मैंने बड़-बेरी की डाल से दो-तीन बेर तोडे और मुट्ठी में रख कर कहा—"अब समझ मे आया, आपकी हर चिट्ठी मे यहाँ की शिकायत क्यों रहती थी। यहाँ इतने दिन रहते हुए गये आपको कभी अपने हाथ से बेर तोड़ कर खाने की इच्छा नही हुई ? आपको यह कैसे समझाया जाय कि छोटे बच्चे को अपने मुँह से माता का बूँद-बूँद दूध चूस कर पीने मे कितना आनन्द मिलता है। गाय के स्तनों से दूध निकाल कर किसी बाल्टी से बछड़े को पिलाया जाय तो वह भी इस बिना परिश्रम के प्राप्त पेय से अधिक सन्तुष्ट नही होगा। आप यह समझ ही नहीं सकते कि गाय, भैंस और बकरी खुले मैदानो से हरी-हरी घास अपने मुँह से तोड़ कर खाने मे जो आनन्द मनाती है वह घर मे चुन्नी, बिनोला और गुड चरने में नही मानती।"

डाक्टर मेरी बात सुन कर खिलखिलाकर हँस दिये। हँसते-हँसते ही बोले—"यदि आपको गाय, भैस की पक्ति मे खड़ा रहना आनन्दप्रद लगता है तो आप खुशी से वैसा कीजिए। यहाँ बेर ही क्या, घास-पत्तो की भी कमी नही होगी। लेकिन मुझे डर आपकी श्रीमती जी का है। कहेंगी, लो दो दिन के लिए बहनोई साहब के यहाँ गये थे सो वहाँ हमारे पतिदेव को अपने हाथो बेर तोड़ कर पेट भरना पड़ा।"

"आपको इस समय मेरी श्रीमती जी का डर लग रहा है या अपनी धर्म-पत्नी का, इसका निर्णय आप स्वय करे। मै इतना ही कह सकता हूँ, मेरी ओर

से इसकी कभी कोई शिकायत नही होगी । इतना आनन्द आ रहा है कि जी चाहता है, इन बेरो से ही पेट भर लूँ । न जाने आप हमेशा क्यो लिखते रहते है कि यहाँ कोई साथी नही है, मन नही लगता !"

"अगर यह जगह आपके मन इतनी भा गई है तो बस जाइए यही । आप-से जाने को किसने कहा है ?"

"लेकिन दुर्भाग्य से मै आप की तरह डाक्टर जो नही हूँ । आप में इतनी दयालुता नही जो मुझ जैसे को कम्पाउण्डर ही बना ले ! यदि दया हो तब भी आप जैसे विवेकशाली के विवेक और कर्त्तव्य को कोई कैसे समझाये की वे मुझ जैसे गँवार कम्पाउण्डर के हाथो आपके प्रिय मरीजो का चुपचाप अहित होता रहने दे ।"

"इसकी आप चिन्ता न करे, विवेक कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेगा । चलिए हमारा दवाखाना देख लीजिए, कुछ मरीजो से बातचीत कीजिए अकेले तंग आ गये होगे ।"

"बिल्कुल नही, अभी तो आप कृपा करके मुझे अपने इस नवीन सहचर से बात करने दीजिए । प्रात काल दवाखाना देख लूँगा । लेकिन एक शर्त होगी । रोगियो से मिलने-जुलने की मुझे स्वतन्त्रता रहनी चाहिए और किसी को मेरे-आपके सम्बन्ध का पता न चलने पाये । प्रातःकाल रोगी आते भी ज्यादा होगे ?"

डाक्टर साहब ने जाने के लिए पीछे कदम रखते हुए कहा, "आपकी जैसी इच्छा । लेकिन कृपा करके बेर खाने मे अहतियात से काम लीजिए । ज्यादा खाने मे कही खाँसी न हो जाय ।"

"सो इसकी चिन्ता मुझ क्यों करनी होगी ? इतने बड़े डाक्टर से सम्बन्ध रखते हुए भी खाँसी जैसे क्षुद्र रोग की चिन्ता करनी पड़ी तो लोग आपको ही बदनाम करेगे । मुझे तो केवल खाने से मतलब है ।"

× × × ×

प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर मै बाहर आ गया । डाक्टर साहब घर मे थे । बाहर लोगो का जमघट लग चुका था । दस-बीस कोस के रोगी

वहाँ आते थे। इतनी दूर से उन्ही रोगियों को वहाँ लाने का कष्ट उठाया जाता था जिन्होंने बीमारी से दो-चार महीने अवश्य युद्ध किया होगा, यह जब विश्वास हो गया कि सीधे यमराज की शरण में जाने से पहले डाक्टर साहब का प्रमाण पत्र भी साथ ले लिया जाय तब कुछ सुविधा ही होगी। दवा तभी वहाँ से ली जाती थी। दो-चार बैलगाड़ियाँ और एक-दो टाँगे द्वार पर खड़े थे। माँ-बहनों की गोद मे तीन महीने के कोमल बच्चों से लेकर तीन-चार वर्ष के लडके-लडकियाँ थे। किसी का फोड़ा पका है, किसी की आँखें आई है और कोई खाँसी से बेचैन है। गीड से बच्चों की आँखें चिपकी थी, इतनी जल्दी उनका मुँह कौन धुलाये, सूरज की किरणे ज्योंही आँखो पर पड़ी बच्चा तिलमिला गया, माँ ने धूप से बचाने के लिए उसका मुँह आँचल से ढँक दिया। जब हाथ या कन्धा दुखने लगा माँ ने बच्चे को दूसरे कन्धे से लगाने के लिए बदलां, किन्तु इन दो क्षणों के व्याघात में ही बच्चे के मुँह से चीख निकल गई। पीड़ा के कारण और नये तथा खुले स्थान के कारण अधिकाश बच्चे रो-चीख रहे थे। इस समय माताओं को घर ही पीसन और पानी लाने से अवकाश नही रहता, इसलिए अधिकाश बच्चे अपने बडे भाई या बहिनो के साथ भेजे गये। भाई-बहन भी बच्चे ही ठहरे, वे इस चीख-पुकार से तंग आ गये थे, उनकी इच्छा होती, खुली धूप मे बैठकर ज़रा शरीर गरम करे या दो-चार दौड लगायें। ईधर-उधर कुछ लोगो न तापने के लिए आग जला ली थी, लेकिन रोगी बालक बैठने दें तब न। छोटे बच्चों को भी न जाने क्या ज़िद होती है, एक पाँव पर नाचते रहो तो चुपचाप पड़े रहेंगे जैसे सो गये हों और ज्यो ही आप बैठे कि वह सप्तम स्वर मे रोकर अपना अभियोग उपस्थित कर देगे।

मेरी नजर दरवाजे के पास सड़क पर एक लड़की पर पड़ी जो दवाखाने की ओर आ रही थी। उसकी आयु मुश्किल से सात-आठ साल रही होगी और उसकी गोद मे दो-ढाई साल का बालक थाँ। वह दो-दो मिनट के बाद आगे कदम रखती और इतने पर भी उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। कदम रखती तो हाथ में बच्चे का सन्तुलन न रहता और बच्चे को सँभालती तो पाँव उखड़ जाते। दो-चार कदम चलकर ही वह बैठती और फिर थोड़ी साँस लेकर उठती। माँ

ने शायद कहा था, भाई का मुँह खुला मत ले जाना, कोई नज़र लगा देगा, इसलिए बेचारी बार-बार भाई का मुँह चादर से ढँक रही थी, भाई ऐसा हठीला था कि वह दूसरे ही क्षण चादर मुँह से हटा देता। इससे बेचारी लड़की और परेशान थी, फिर भी वह ज्यो-त्यों कर के दवाखाने पहुँच गई

माताओं को डाक्टर की अपेक्षा अपनी हर्रे की घूँटी और ओझा के गंडे डोरो का ज्यादा भरोसा था। प्रातःकाल काम के समय बच्चा सताये नही इसलिए उन्हे बराये नाम दवाखाना भेज देती थी जिससे कुछ समय तक वे निश्चिन्तता से काम कर सके।

कुछ स्त्रियाँ लहँगा-ओढ़नी पहने थी, कुछ साड़ी। एक-दो औरतें सूथनी पर लम्बा कुर्त्ता। उनके कानों में झूलने वाले मोटे-मोटे चाँदी के झुमके मैल से काले पड़ गये थे। जिनकी ओढ़नी या कपड़ साबत थे, उनका अंग उससे न तो पूरी तरह ढँका हुआ था और न कपडा उनकी शोभा बढ़ा रहा था। उनके लिए कपड़ा केवल तन ढकने का साधन है, शोभा का नही। इसलिए उसके साफ-स्वच्छ रखने की आवश्यकता नही। मैले कपड़ों से भो तो शरीर की लज्जा बच जाती है। दो-तीन गज की ओढनी भी मैल के मारे और सलवटो के कारण ओछी पड़ती थी।

ईन सब को देख कर मन मे प्रश्न हुआ, डाक्टर जैसा स्वच्छता-प्रिय व्यक्ति इन व्यक्तियों की रोग-परीक्षा कैसे करता होगा ? ठंड मे इतनी जल्दी आने की जरूरत ही क्या थी ? दवाखाना साढ़े आठ बजे खुलता है, ये लोग छः बज ही जमा होने लगते हैं। प्रश्न करने पर कम्पाउण्डर ने बताया—"इस समय घर की औरतें पीस-पो लेती हैं, समय निकाल कर आ जाती है। लेकिन नौ-दस बजे तो वे खा-पीकर अपने खेतों पर जाती हैं। दूसरे इन लोगों का भरोसा है, ज्यों-ज्यों सूरज चढ़ता है बीमारी दब जाती है। निराहार रह कर सुबह हाथ दिखाने से बीमारी का निदान अच्छा होता है। सब से बड़ा कारण है—बीमार आते हैं ज्यादा, डाक्टर साहब सब को देख नही पाते। जो देर से आया वह पीछे पड़ जाता है। रोज़ पचासों रोगियों को यों ही लौटना पड़ता है। कारण—कोई एक होगा, पर रोग की अपेक्षा यह परेशानी भी उनकी कम नहीं

"तुम्हे क्या हुआ है, बाबा ?" मैंने एक वृद्ध से पूछा। वृद्ध की एक आँख पर पट्टी थी, ऊपर पगडी में एक कागज का नोला-सा पुट्ठा लगा था, जिससे आँख धूप से बची रहे।

"बेटा, इस आँख में फूला पड़ गया था। अमृतसर का एक दवा बेचने-वाला डाक्टर आया था। पहले बीस रुपये माँगता था, फिर दस रुपय पर राजी हुआ। बोला, आँख से दीखने न लगे तो दस के सौ ले लेना। उसके नाम के पुर्जे भी छपे थे। हमारे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर। पडोसी के लडके रामधन ने पढ़ा था, उस डाक्टर की बडे-बड़े लोगों ने तारीफ की थी। न जाने कौन-कौन राजाओ ने उसे सार्टिफिकेट दिये थे। न जाने क्या कर गया, फूला गया नही, उल्टे सिर मे जोर का दर्द रहने लगा है। आँख मे जो पहले परछाई-सी पड़ती थी, अब वह भी गायब हो गई। उसे कहाँ खोजें। उस बेचारे का दोष भी क्या, उसने अच्छा ही किया होगा। दोष तो सब हमारे कर्मो का है। पुराने जमाने मे ऐसे बैद थे, नबज देख कर बीमारी पहिचान जाते। मैंने उस अमृतसर वाले डाक्डर से कहा था—डाक्डर साहब, पहले नबज देखकर पहिचान लीजिए, आँख मे कौन रोग है। उसने कहा, आँख का रोग बिना नाड़ी के ही समझ मे आ जाता है। यही उसकी गलतो हो गई!"

वृद्ध ने अपनी ग्रामीण भाषा मे यह उत्तर दिया। मुझे वह भाषा बहुत मधुर लगी। उसमे भावों को व्यक्त करने की इतनी सरलता और सामर्थ्य थी कि घण्टों उसे सुनने की इच्छा होती थी।

पास बैठे हुए एक दमे के रोगी ने अपनी खाँसी को किसी तरह रोक कर कहा—"अजी राम कहो। आज-कल के ये छोकरे क्या समझें रोग किस चिड़िया का नाम है! बात-बात मे चीरा-फाड़ी। रोग का जड़-मूल समझते नही। हमसे ही पूछते है—क्या हो गया है? दस्त साफ आता है या नहीं? क्या बीमारी है? अगर हमे ही बीमारी का पता हो तो इतनी दूर से यहाँ आने की जरूरत? अपने गले में जो रबड़ की नली डाले रहते है उसे छाती पर लगाकर खुद हिरदै से पूछ ले। हमारे गाँव से सात कोस पर एक नाँगला है। उसमे के केसू मिसर के दादा के भाई रामेसुर बैंद का नाम कलकत्ता-बम्बई तक

मशहूर था । बाबू जी झूठ न मानिए, हम सुनते है, रामेसुर बैद नाड़ी देखकर बता देते थे रोगी ने महीना भर पहले क्या खाया था । उनके पास कही से एक रोगी सेठ इलाज कराने आया । हालत यह थी कि अब मरा तब मरा । बैदजी ने इलाज किया, सेठ अच्छा हो गया । सेठ अचानक ही फिर ज्यादा बीमार हो गया । बैदजी ने नाडी देखी तो बोले, 'सेठ, तुमने मूली खाई है ।' सेठ क्या जवाब देता । उसने मूली खाई थी । बैद जी ने कहा डरने की बात नही, हमे रोम-रोम की बात मालूम हो जाती है । जो पेट की बात नही जानेगा वह बैदकी क्या खाक करेगा ? हॉ परहेज कड़ा करना पड़ेगा । वह लोग परहेज़ पर बड़ा ज़ोर देते है ।"

इतना कहकर बूढा फिर खो-खो करने लगा ।

कुछ दूर बैठे हुए एक किसान पर मेरी दृष्टि गई । औधे मुँह सिकुड़ा हुआ पड़ा था । कॅपकपी छूट रही थी, दॉत कटकटा रहे थे । मेरे पॉवों की आहट पाकर उसने कहा—"कौन हो भाई ? ज़रा मुझे मेरी दोहर उढ़ाते जाओ; बड़ा पुण्य होगा ।"

मैंने उसकी जाड़े की दोहर उस पर अच्छी तरह डाल दी । फिर मैं स्वयं उसके सिरहाने इस तरह बैठ गया, जिससे मेरे शरीर की गर्मी उसे पहुँचती रहे ।

पन्द्रह-बीस मिनट तक उसे सहारा दिये मै वैसे ही बैठा रहा । उसका रोम-रोम कॉप रहा था । रह-रह कर कँपकँपी के बजने वाले तारों के स्पन्दन का स्पर्श पा मै भी सिर से पॉव तक कॉप जाता था । उसके शरीर मे मानों सागर की लहरें उमड़ रही थी । सॉस रुका-रुका-सा चलता था, बीच बीच में अँगड़ाई के साथ उसके मुँह से विवश आह निकल जाती थी । कुछ देर बाद चादर को भेद कर गरम-गरम भाप आने लगी । उसका शरीर अब गरम हो रहा था । उसने लरजते स्वर में कहा—

"आप जुग-जुग जिये । आज मेरे प्राण ही निकल गये थे । जोर की प्यास लगी है, दो घूँट पानी पिला दो तो जनम-जनम ऋण मानूँगा ।"

मैंने उसे पानी लाकर पिलाया । प्रश्न किया—"इस हालत मे तुम यहाँ क्यों आये भाई ? तुम्हारा घर कहाँ है ? चलो मैं तुम्हें घर पहुँचा आऊँ ।"

"बाबू मेरा घर इस गाँव में नहीं है यहाँ से तीन कोस ...पर मेरा खेडा...है। सड़क से लगी वह ...पगडण्डी दिख रही है ना वही मेरे.... गाँव को पहुँचती है। ससुर यह जूड़ी...बडी वाहियात है सारी...सुध-बुध ..... भूल जाता हूँ। बुखार का जाड़ा हाथी की देह भी तोड़ देता है। दवा लेकर अकेला चला जाऊँगा, तब तक धूप खिल जायेगी।"

वह तीन कोस चल कर आया था। मेरे लिए विश्वास करना सरल न था।

"तुम्हें बुखार कब से आ रहा है ?"

"हो गये होंगे ढाई-तीन महीने तो।" उसने बिल्कुल सरलता से उत्तर दिया।

"ढाई-तीन महीने हो गये। दवा नही ली ?" मेरे स्वर मे आश्चर्य था।

"क्या दवा लेता ? यह बुखार तो यो ही चढ़ता-उतरता रहता है। इसकी दवा-दारू करने बैठें तो काम कैसे चले ? गरम-गरम दाल-दलिया पीकर, ओढ़ कर सो रहे, पसीना आया और बुखार उतरा। .....न हो तो सोठ-पीपल डाल कर तुलसी का काढ़ा भी पी लिया।.....लेकिन इस बार न जाने यह ......कैसा पापी बुखार पीछे पड़ा है छोड़ने का नाम ही नही लेता।.....दुनिया भर के गंडे-ताबीज बाँधे, जादू-टोना किया और जब बस न चला तो डाक्टर के पास आया। दवा मे एसी बदबू मारती है कि दम घुटने लगता है। स्वाद नीम से भी कड़ुवा। घर वालों के कहने पर यहाँ से दवा ले जाता था और योही डाल देता था। अब हार कर पीनी पड रही है। कभी रोज़ आ जाता है बुखार, कभी एक दिन आड़। दिन निकलते ही आ दबाता है। (कुछ रुक कर) आजकल गेहूँ के खेत मे पानी देना होता है। साझे की खेती, साझी कितने दिन चुप रहेगा ? चार घड़ी रात रहते ही कुआँ चलता है। सुबह ठंड के कारण मै बारे लेने नहीं जाता। दिन चढ़ने पर क्यारियों मे पानी देता हूँ। आधी रात तक खेत की रख-वाली करने की बारी है। इस बुखार से कुनबा परेशान है। इस पर कम्पाउण्डर दो दिन से ज्यादा की दवा नहीं देता। हर तीसरे दिन दवा के लिए इतनी दूर चल कर आना पड़ता है, काम का हर्ज होता है सो अलग।"

डाक्टर दवाखाने मे आये। डिस्पेन्सरी का दरवाज़ा खुला। मरीज

एक दूसरे से पहले दवा पाने के लिए धक्कम-मुक्का करने लगे। अब तक उदास, वेदना से पीडित और निष्क्रियता के मारे इन रोगियो मे कुछ क्षण के लिए इतनी स्फूर्ति, इतनी चेतना आ गई थी, जैसे बीमार नही है। छोटे बालक और स्त्रियाँ दूर किनारे पर खडे हो गये। उनके लिए भीड़ मे दूसरा उपाय न था।

मै डाक्टर साहब की बगल में बिछी कुर्सी पर जा बैठा। डाक्टर गदन झुकाये ही सक्षिप्त प्रश्न करते —"क्या हो गया है ?" अभी उत्तर भी पूरा नही होता कि उनकी कलम नुस्खा लिख कर तैयार कर देती। बहुत कम सौभाग्य-शाली रोगी थे जिनको उन्होंने अपनी दृष्टि से देखकर रोग का निदान किया ५०-६० से भी अधिक मरीज और केवल तीन घंटे। और उपाय भी क्या था मैं अपलक इस क्रिया को देख रहा था। कभी किसी रोगी को देखता, कभी डाक्टर साहब को।

एक घण्टा बीता होगा, जितने रोगी गये उनका स्थान नयों ने लिया। इसी समय पुलिस का थानेदार तीन-चार साथियो के साथ बैलगाडी पर कपड़ों में लिपटी लाश लाद कर लाये। गाड़ी के पीछे-पीछे आठ-दस किसान—नर-नारी थे।

किसानो ने लाश उतार कर ऑपरेशन टेबल पर सुलाया। मरीज कमरे से बाहर कर दिये गये। किसान नर-नारी उदास मुख किये उस लाश को चारों ओर से घेर कर बैठ गये। एक स्त्री अधिक उदास दिखाई पड रही थी, वह रह-रह कर सिसकियाँ भरती और अपलक दृष्टि से उस लाश की ओर ताक रही थी।

थानेदार डाक्टर को सलामी देकर सामने बैठ गया। वह पान चबा रहा था। पान के रंग से रँगे लाल-लाल ओंठों पर मुस्कान लाते हुए उसने कहा—"डाक्टर साहब, आज हमारा आपका पहिला ही मामला है। बौनी कुछ बुरी नहीं हो रही है। खुदा ने चाहा तो आगे चलकर आपकी ज्यादा से ज्यादा खिदमत कर सकूँगा।"

इतना कहने के बाद उसकी ओठों की मुस्कान आँखों में समाती दिखाई

दी और वह फिर बडे गोर से डाक्टर के मुँह की ओर देखने लगा। जैसे वह उनके मनोभावों को ध्यान-पूर्वक पढ़ रहा हो।

"आप मेरी खिदमत क्यों करेंगे ? आपकी इस कृपा का अर्थ मै पूरा-पूरा नही समझ सका।" डाक्टर ने आश्चर्य भरी निगाह से थानेदार को सिर से पैर तक देखकर कहा।

"ही-ही-ही" थानेदार खिसियानी हँसी हँस कर बोला—"जी हाँ," मेरे कहने का मतलब है, जी हाँ, आपको इस पेशे मे आये बहुत दिन नही हुए है, हाँ सच ही कह रहा हूँ, खुदा की कसम, आप जल्दी ही इन सब बातो से वाकिफ हो जायेंगे। इसका पूरा ज़िम्मा मेरा रहा। काम करते-करते ही इन्सान माहर होता है।"

"आप जो कुछ कहना चाहते है साफ-साफ कहें!" डाक्टर साहब के स्वर मे उग्रता आ गई थी।

"जी, साफ-साफ ही कहता हूँ। लेकिन"—कहकर थानेदार ने मेरी ओर सन्देह की दृष्टि डालकर, आँखों मे ही डाक्टर से जैसे प्रश्न किया।

"आप इनकी चिन्ता न कीजिए। घर के आदमी है।"

विश्वस्त होकर थानेदार ने कहना शुरू किया "जी हाँ। बात यह हुई, डाक्टर साहब, पास के गाँव में दो भाइयो में यों ही तकरार हो गई। बड़े भाई को जरा जोश आ गया। उसने डराने के लिए गँडासा फेका। उनका मकसद छोटे भाई की जान लेना नही था। गँडासा छोटे भाई की गर्दन पर गिरा और वह वही दस-पाँच मिनिट बाद ही ढेर हो गया। पुलिस और अदालत मुजरिम की नियत को बहुत अहमियत देते है। अगर बड़े भाई की नियत छोटे को मारने की होती तो हम उसे कभी न छोड़ते। मै जब पहुँचा, तो बड़ा भाई अपने किये पर दहाड़ मार-मार कर पछता रहा था। पाँवों पर सब घर के लोग गिर गये। आप अगर चाहे तो घर भर के प्राण बचा सकते है।"

"मेरे चाहने से क्या होगा ?"

"आपके चाहने से बहुत कुछ हो सकता है, सरकार! बस आपकी

इन गरीबों पर महरबानी हो। आप इतना सर्टिफिकेट लिख द कि इस आदमी की इत्तेफाकिया मौत हुई।"

"इत्तेफाकिया मौत!" डाक्टर के स्वर में आश्चर्य, विस्मय और न जाने क्या एक साथ ध्वनित हो उठा। पुलिस का ओहदेदार इतनी बड़ी झूठ बुलवाने के लिए इतनी सरलता से आग्रह कर बैठेगा उसकी सम्भावना न तो डाक्टर को थी, न मुझे ही। डाक्टर ने कुछ रुक कर कहा—"मै कैसे लिख सकता हूँ? साफ कत्ल हुआ है, लाश खून में लथपथ है।"

थानेदार के चेहरे पर अब वह स्वाभाविक मुस्कान नही रही। कुछ क्रोध और ग्लानि से, बिना सर उठाये उसने कहा—"हुजूर, इन सब बातों को कौन जानता है? गाँवों में रोजमर्रा यही होता है। इन सब मामलों को हम अदालत तक ले जायें तो हाकिमों को एक मिनिट की फुर्सत न मिले। आप अभी इस पेशे मे नये आये है। आखिर आप समझिये हम लोगों को—आप यही समझ लीजिए कि.......मैं साफ-साफ बताता हूँ, जो यहाँ आपसे पहिले डाक्टर थे, वे तो हमेशा ऐसे मौको की ताक में रहते थे। दस-पाँच दिन खाली गुज़र जाते तो कहते थे, दारोगा साहब, कोई मुर्गी लाइए न!" थानेदार ने अपनी बात समाप्त करके उन किसान नर-नारियों की ओर संकेत किया जो लाश के साथ आये थे!

उनमे से एक स्त्री आई और दस-दस के पाँच नोट डाक्टर के सामने रखकर उनके पाँवों पर लोट कर रोने लगी। रुदन से आस-पास का वातावरण करुण हो गया। रुदन के चीत्कार के बीच-बीच मे वह स्त्री कह रही थी—"डाक्टर राजा, मेरा सुहाग लुट गया। अब तो मेरे खसम के प्राण आयेंगे नही, मेरे जेठ को बचा लीजिए, नही तो हमारा घर बरबाद हो जायेगा।"

डाक्टर ने थानेदार को सम्बोधित करके कहा—"थानेदार साहब, मुझसे यह सब नहीं होगा।"

"नहीं होगा मत कहिए। आप रुपयों की तरफ मत देखिए, इन लोगों के प्राण बचाइए, नहीं तो घर अनाथ हो जायेगा। आप भरोसा रखें इससे अधिक

ये लोग आपकी सेवा नही कर सकते । ये लोग बड़ी मुश्किल से इतना जुटा पाये हैं ।"

"थानेदार साहब, अपनी बकवास बन्द कीजिए !"

डाक्टर ने लाश का निरीक्षण कर, जो प्रमाण पत्र देना चाहिए था वही दिया । उस घटना से उनके मन में उदासी छा गयी थी । दूसरे मरीजो को न देख वे घर चल दिये । मरीज़ निराश हो खाली हाथ लौटने लगे ।

बाहर निकल कर उन्होंने मुझसे पूछा—"अब तो आप डाक्टर या कम्पाउण्डर मे से कुछ बनना नही चाहेगे न ?"

"एक ही दिन मे उत्तर कैसे दे सकता हूँ ?"

हम दरवाज़ा पार करके घर के अहाते मे घुसे, इतने मे एक स्त्री जो अपन को एक फटी-सी गुदड़ी मे छिपाये थी आकर डाक्टर के पाँवो पर गिर गई । उसके हाथ-पाँव सूखकर लकड़ी बन गये थे । चेहरा पीला, खून का कही नाम नही । कहने में अत्युक्ति होगी. फिर भी कह डालता हूँ, यदि उसके शरीर की परीक्षा की जाती तो शायद मुश्किल से दस-बीस बूँद खून निकलता ! उस स्त्री ने दोनों हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—डाक्टर बाबू, तुम्हारे बाल-बच्चो की खैर मनाती हूँ । बड़ी तकलीफ है, कोई दवा दीजिए ।"

"यों पड़ी क्यों जाती है ? क्या तकलीफ है ?"

स्त्री ने उठने की कोशिश की, पॉव कॉप गये । सहसा उठ न सकी । बैठे-बैठे उसने कॉपते स्वर में कहा—"बाबूजी, तीन दिन पहले मुझे लड़का हुआ है । उसे मैं अपने पति के पास छोड़ आई हूँ । मेरी छातियो मे दूध नही उतरा । जिस दिन लड़का हुआ उसी दिन से मुझे जोर का बुखार चढ़ा है । तब से उतरा नहीं । मैं अपनी भुगत लूँगी । मुझे बारह बरस तक बुखार बना रहे तब भी फिकर नही । लेकिन बच्चे का बिलखना मुझसे नहीं देखा जाता !"

"देखूँ तेरा हाथ" कहकर डाक्टर ने झुक कर उस स्त्री का हाथ देखा और चौक कर बोले 'अरे तेरा शरीर तो भभक रहा है । हाँ, बुखार १०३° होगा । प्रसूति ज्वर मालूम होता है । परसो बच्चा हुआ, इतना तेज बुखार है, ऐसे में तू यहाँ तक आ कैसे गई ?"

"घर पास मे ही है। सुबह का वक्त था, कुछ हलका मालूम हुआ, जैसे तैसे करके यहाँ आ गई। आप मेरे बुखार की चिन्ता न करें। कोई ऐसा दवा दीजिए, जिससे छातियो मे दूध भर जाय। बच्चे की जान बचे।"

"अच्छा, चल दवा दिलाये देता हूँ !"

मै भी उनके साथ हो लिया। डाक्टर ने नुस्खा लिखकर उससे कहा—"यह दवा है। इसे तीन-तीन घण्टे से लेना। हाँ, अन्न नही खाना। अन्न खायेगी तो नही बचेगी। जितना हो सके दूध पी।"

स्त्री दो-चार क्षण अपनी फटी-फटी आँखों से डाक्टर का मुँह देखती रही। फिर उसने कहा—"डाक्टर साहब, अगर अनाज ही खाने को मिलता तो मुझे यह बुखार क्यो चढ़ता और दूध के लिए बालक को बिलखना क्यो पड़ता ? आज सात दिन से हमारे घर मे अनाज का दाना नही है। खेत की गाजर पर गुजर कर रहे हैं। इस बीच यह लडका हो गया। कोई ऐसी दवा दीजिए जिससे दूध आ जाय।"

इतना कह कर वह उसी तरह डाक्टर को देखती रही—या सम्भव है उसे कुछ भी दिखाई न दिया हो। मैने देखा, वह अब पत्थर की मूर्ति की तरह स्थिर और स्तब्ध हो गई है।

मैने मुँह फेर कर अपनी आँखें दस्ती से पोंछ ली !

बछड़े

(१)

मुझे अपने बचपन की सबसे पुरानी जो घटना याद आती है, उसी का वर्णन करने चला हूँ। उस समय मेरी आयु अधिक नही थी। एक दिन हमारे घर में सुबह-सवेरे से ही विशेष उत्साह दिखाई देने लगा। उस दिन भोर होते ही पिताजी गढ चले गए थे। गढ हमारे गाँव से तीन मील था। वहाँ प्रतिवर्ष गर्मियों में जानवरों का मेला भरता था! लोग दूर-दूर से जानवर बेचने-खरीदने आते थे। गर्मी के दिन थे, पिताजी ठण्डे-ठण्डे में चले गए। हम लोग उस समय सो रहे थे।

माँ ने घर का वह छप्पर खोल रखा था, जो बारहो महीने बन्द रहता था। इस छप्पर को ताला कभी नही लगाया गया; लेकिन हम उस के भीतर भी नही जा सकते थे। बाहर ही से चकित नेत्रो से देखा करते। उस छप्पर मे दादा, परदादा और न जाने कितनी पीढ़ियो का सामान जमा था। घर की बेकार-से-बेकार चीज फेकने के बजाय इस छप्पर मे रखी जाती थी। पानी पीने की हण्डिया जब उतर जाती तो वही बन्द कर दी जाती और समय आने पर उनसे काम लिया जाता। शादी-ब्याह के मौके पर जब कभी यह छप्पर खुलता हमलोग बड़े उत्साह से उसमें प्रवेश करते थे। माँ रोकती—बाहर रहो, कोई साँप-बिच्छू काट खाएगा, लेकिन उन दिनों हम लोगो को बिच्छू का ज्यादा डर ही नही लगता था।

माँ धूल मे भरी थी। एक कोने के बाद दूसरे कोने की खोज हो रही थी। एक बड़ा माट बाहर निकाला गया, इसमे कभी दही मथा जाता था। मै सुनता आया हूँ, दादी के समय उनके पुण्य-प्रताप से हमारे घर गाय-भैसें थीं। घर की गाड़ी और बहली थी। हमारा घर गाँव के किनारे पडता था, वहीसे गाँव में दाखिल होने का रास्ता जाता था। प्रातःकाल जो राहगीर गाँव मे आता गर्मियों मे छाछ-राबडी और जाड़ों मे दूध-राबड़ी का कलेवा अवश्य करता। हम दादी के जमाने की कल्पना मात्र कर सकते थे। हमारा वह वैभव कैसे

समाप्त हो गया, इसका इतिहास मुझे आगे चलकर मालूम हो सका। उस समय मैने केवल यही देखा, दादी का बिलौना जो कभी लूणी-घी से तर रहता था, सूखा पडा था और उस पर धूल जमी थी। छान मे खोसी हुई रई (मथनी) निकाली गयी। नेती (मथनी चलाने की रस्सी) जर्जर हो चुकी थी, इसलिए पुरानी धोती फाड़कर छोटी-सी रस्सी बँटी गयी। कड़बी काटने का गँड़ासा, दूध गरम करने की मिट्टी की अँगीठी, घास खोदने की खुर्पी, एक-एक करके ये सभी चीजे बाहर निकाली गयी। बहुत दिनो बाद उन चीजो की सफाई का नम्बर आया।

मै दूध परोसने का पौआ साफ कर रहा था। इतनी तत्परता से कभी किसी राजपूत ने अपनी तलवार भी नही चमकाई होगी। पौवा लोहे का था, जंग खा गया था; लेकिन मैने भी इतने घिस्से लगाये कि चाँदी की तरह चमचम करने लगा। मैने उसकी चमक माँ को दिखाते हुए पूछा, माँ मुझे दूध दोगी न ? और माँ ने भी तत्काल कहा—हाँ इसी पौए से दूँगी, रोजाना दो पौए। लेकिन रम्मू को दूध नही मिलेगा।

मेरा छोटा भाई रम्मू पास ही गुल्ली-डंडा खेल रहा था। माँ का हाथ नही बँटा रहा था।

मै बर्त्तन साफ कर रहा था और कल्पना का घोड़ा दौड़ा रहा था। हमारे घर आज एक नही—दो गायें आ रही थी; गायों को खरीदने का प्रबन्ध न जाने कैसे हुआ था। आगे चलकर मै इतना ही जान सका कि गाय के घी पर हमारा कोई अधिकार नही है। जिस साहू ने रुपये दिये थे, उसने करार करा लिया था कि हर हफ्ते चार सेर लूणी घी उसके यहाँ पहुँच जायगा। यह घी गाय के मूल रुपयों मे नही ब्याज मे जमा होता था। घी के लोभ में दूध भी कम खर्च किया जाता था। हाँ, छाछ का ठाठ था। छाछ से तसल्ली हो जाती थी। लेकिन उस दिन मेरा विचार दूसरा था। सोचता था, दो गाये कम-से-कम दस सेर रोजाना दूध देगी। दस सेर दूध हमारे परिवार के लिए काफी होता। बेचने की बात उन दिनो कोई सोच नही सकता था। दूध-पूत बिकते जो नही। मैने निश्चय किया था, सुबह दूध निकलने व गरम होने मे देर होगी,

मै दही के साथ बाजरे की रोटी का कलेवा करूँगा । एक-दो बार पडोस से दही आया था और ऐसे कलेवे का आनन्द उठा चुका था । दही-रोटी के कलेवे से विद्या माता भी खूब आयेंगी । साँझ को दूध मे रोटी मीज कर खाऊँगा । दण्ड-बैठक ज्यादा मारूँगा ।

(२)

मैं गाय के रंग की बात सोचने लगा । मुझे नीली गाय पसन्द थी । हमारे गाँव की गायें ज्यादातर सफेद थी । मुश्किल से दस-पाँच नीले रंग की, दो-चार चितकबरी और एक-दो लाल-पीली । कपिला गाय के आगे मैं हाथ जोडता था, कभी उसे चने की दाल खिलाता । लेकिन वह देखने में अच्छी नहीं लगती थी । मुझे नीली गाय भाती थी । मैंने सोचा दोनों मे से एक गाय अवश्य नीली होगी, बिल्कुल नीली कच्च नीले गगन जैसी । मै नीली को ही अपनी गाय बनाऊँगा । अब सींगों का सवाल आया । मुझे बड़े सीग पसन्द नहीं । हमारी नजर सबसे पहले गाय के सीगों पर ही जाती है, सीग गाय का श्रृंगार है, उसी तरह जैसे केश में स्त्रियों की शोभा है । अगर आँखें सींगों में ही उलझ जायें तो अच्छा नही। मैंने माँ से कहा—"माँ, पिता जी छोटे-छोटे, गोल, सुडोल सीगो की गाय लायँगे ? दोनो सीग नोंकदार हो ।"

माँ ने उत्तर दिया—धत् पगले, बड़े सीग की गाय दूध ज्यादा देती है, जंगल मे चरने गई तो उसकी धाक रहेगी । शेर का मुकाबिला पड़े तो लम्बे सींग की गाय पीछे नही हटती ।

मै शेर के मुकाबिले की बात नही सोच सकता था । हमारे गाँव से कुछ हटकर पहाड़ी थी, उस पहाड़ी मे कभी-कभी चीता आ जाता था । चीता गाँव के दो-चार कुत्ते ले जा चुका था ।

बर्त्तन माँज-धुलकर तैयार हुए । ज्यादातर मिट्टी के बर्त्तन थे । लोहे-पीतल के बर्त्तनों पर कहीं-कही काले धब्बे रह गये थे जो प्रयत्न करने पर भी नहीं उतर सके । साफ-सुथरे वे बर्त्तन जैसे हम लोगों को आशीर्वाद दे रहे थे । बरसों बाद उनके भाग जागे । उस दिन खूँटा गाड़ने की लकड़ी नहीं थी, लेकिन स्यानी की ल्हास और दूसरी चीज़ें तैयार कर दी गयी । गाय बाँधने की

रस्सी पिता जी साथ ले गये थे। मेले मे मज़बूत रस्सी नही बिकती। वह दिन कब उगा और कब छिपा इसका पता ही नही चला। सन्ध्या हुई। गाय-भैंसे घर लौटी। हाल की ब्यायी गायें रंभा-रंभाकर तेजी से आगे-आगे आ रही थी, बाखडी गाये सबसे पीछे धीरे-धीरे लापरवाही से आती थी। गो-धूलि का समय किसी भी गाँव मे बडा सुहावना होता है। गो-खुरो से उडी धूल, अपनी गाय बाँधने के लिए किसानो की दौड़-धूप, माँ की आहट पा बछड़ो की उछल-कूद और बाँ-बाँ की ध्वनि से गाँव में जैसे प्राण आ जाते है। इन गायो का लौटना देख मन मारे खुशी के समा नही रहा था। कल हमारी गायें भी कूदती-फाँदती आयेंगी। माँ उन्हें चारा डालेगी और न जाने कितने दृश्य आँखों के आगे घूम गये।

अँधेरा हो गया था, पिताजी नही आये थे। हम लोग रास्ते पर टकटकी लगाये देख रहे थे। कुछ समय बाद दो गायें दीखाई दी। पिताजी उनके पीछे रस्सी थामे आ रहे थे। गाये अनिच्छा से कदम बढ़ा रही थी। गायों के साथ अपने-अपने बछड़े भी थे। गाय ज्यादा दिन की ब्याई नही थी, बछड़े खुले थे, अपने आप आ रहे थे। पहिली बार इन्हें माता का यथेच्छ दूध पीने का अवसर मिला। बछड़ों को देख हम दोनों भाई खुश हुए। हमने अब तक बछड़ों के बारे में सोचा ही नही था। गाये सीधी थान पर ले जाई गयी, जहाँ उनके लिए खल में सनी सानी रखी थी। माँ भीतर गयी और दो लोटे पानी ले आयी। गायों के खुरों की कुकुम अक्षत से पूजा की, दोनों गायों को दुलराया और फिर हाथ जोड़कर बोली—गैया माता, बाल-बच्चों की रिच्छा करना। गाय ने इस प्रार्थना को सुना या नही, गाय ही जाने, लेकिन हमने देखा माँ का स्पर्श पा दोनों गाये सिर झुकाये कान हिलाने लगी। उस दिन गायों ने मुँह नही लगाया। उनकी आँखों में उदासी थी। रास्ते की थकान के अलावा कोई दूसरी बात भी थी जिससे गायें प्रसन्न नही थीं। उस दिन वे यों ही अटका दी गयी। बछड़े बाँधे नहीं गये।

पिताजी गायों के बारे में माँ से बात कर रहे थे कि किस गाय के कितने दाँत हैं, कौन पहलून है और कौन दो जून। मोल-तोल कैसे हुआ। इतनी

सुशील गायें कैसे मिल गयी। हम दोनो भाई अपने गाय-बछडे बाँट रहे थे। सौभाग्य से एक गाय नीली थी और दूसरी सफेद। सफेद का बछड़ा सफेद। मेरी इच्छा पूरी हुई। नीला बछड़ा मेरा था। छोटे भाई ने सफेद बछड़ा लिया। हम लोग उनका सिर सहलाने लगे। घर से गुड-रोटी लाये। बछडो ने रोटी नही खायी। गाये अपने-अपने बछडों को चाट रही थी। हम लोग बाल्टी में पानी लाये। बछडे और गाय ने पानी नही पिया।

(३)

जितनी बस्ती गाय की होती है, उतनी मनुष्य की नही। गायो के आने से घर भरा-भरा लगने लगा। कही कड़वी कट रही है, कही कड़वी के पूले जमा है, कही बिनौला और दाना भीग रहा है। घर मे बहुत-सा सामान ही नही आया, नयी-नयी ध्वनियाँ भी आयी। सूरज निकलने से पहले माँ का दूध बिलौना, रई की घरघराहट और दही का छाछ बनकर माट मे कोलाहल करना, पिताजी या बड़े भाई का भोर होते ही हूँ, हूँ के साथ निश्चित ताल पर गँड़ासा चलाना और कडबी काटते समय गँडासे का छपछप करना, दूध दुहते समय घईं-घईं की मनोरम ध्वनि।

घर भर को काम मिल गया था। सभी लोग गायो का कुछ-न-कुछ काम करते थे। हम लोग गाय-बछडों को खेत पर पानी पिला लाते, गायो को खेत मे छोड़ आते, बछडे खेत मे जाते नही थे, हम दोनो भाई अवकाश के समय दोनो बछड़ो को खेत ले जाते। उनके साथ हम दौड़ते। दूध दुहते समय हम लोग बछड़ो को बड़े चाव से खोलते-बाँधते। उस समय गाय और बछडो की विकलता देखने लायक होती थी। गाय का बार-बार बछड़े की ओर निहार कर छटपटाना। रस्सी मुश्किल से खुलती थी, झटके लगते थे, उनकी उछल-कूद के कारण। जेवड़ा खुलते ही एक छलांग मे अन्तर पार करके स्तनो से दूध पीने लगते। जब गाय पावस आती तो बछड़ो को हटाकर बाँधना पड़ता था। उस समय मुश्किल से ही उन्हे खूँटों तक लाया जा सकता था।

थान साफ करने मे हम लोग विशेष मेहनत करते थे। कही गोबर न पड़ा रहे, गोमूत्र से भीगी मिट्टी कही न रहे, इसकी चिन्ता रहती थी। दूसरे तीसरे

दिन पुरानी मिट्टी हटाकर उसकी जगह नयी मिट्टी बिछाते । आठ-दस रेत की पराते गॉव के गोहरे से लाते, फिर चारो तरफ समतल करते । उस पर हमारे गाय-बछड़ो को जो आराम मिलता था वह क्या किसी राजा-रईस को मखमल की सेज पर मिल सकता था ?

धीरे-धीरे जाड़े के दिन आये । दीवाली के दूसरे दिन गोवर्द्धन-उत्सव पर हमारे घर बड़ा आनन्द रहा । गायो के श्रृंगार के लिए हम लोग डेढ़-दो महीने से मोरपख चुन रहे थे । इन्ही दिनो मोर अपने पंख छोड़ता है । हमारे घर के नीम पर एक मोर बहुत जमाने से रहता है । सुबह हम लोग मोर पंख खोजते, लेकिन मोर न जाने अपनी पाँखे कहाँ छोड़ आता था । हम लोग मोर की ताक मे रहत, पंखो की तरफ टकटकी लगाते, ऐसा लगता वह चँदौआ अभी गिरेगा, लेकिन घंटेभर की प्रतीक्षा के बाद भी चंदौआ अटका रहता । मोर से हमारी प्रार्थना होती, मोर देवता, पंख दे, लेकिन मोर हमारी प्रार्थना नही सुनता था । हमलोग प्रातःकाल ही गॉव से जंगल को जाते तो किसी दिन बीस-तीस पाँखे बटोर लाते । कोई दूसरा लड़का न पहुँचे इसके लिए मै जल्दी ही चला जाता । हमें धीरे-धीरे पता चल गया कि मोर खुले मैदानों मे पंख न छोड़ कर कँटीली झाड़ियों या काँटेदार बाड़ो पर पख डालता है, जहाँ आदमी की दृष्टि न पड़े । फिर तो हमलोग सीधे उन स्थानों से पंख चुन कर लाते । पखो के लिए गॉव की ऊँची से ऊँची पहाड़ी की चोटी पर चढ़े, प्राण खतरे में डाले । घरवालों की गालियॉ सुनकर छप्पर की छानपर भी चढ़ जाते और पंख बटोरते । कटार और सेल की बजाय चॅदौवे ज्यादा काम आते थे । चॅदौवे अलग काट लिये जाते । पंखे के एक तरफ की सफेद चीरी उधेड़ कर अलग कर ली जाती । पंख-दण्ड के अन्दर का गूदा कभी-कभी कान के छेदने मे पहिनाया जाता । सफेद चीरी से गूँथकर मॉ ने चार सुन्दर हार बनाये, चॅदौओं से मुकुट बने । गर्मी में जानवरो के रोम झड़ जाते है, जाड़ों मे रोम घने और बड़े होजाते हैं । इन दिनों गाय-भैंसें वैसे ही सुन्दर लगती है । गायों को अच्छी तरह साफ करके हल्दी-मेंहदी और रोली से रॅगा गया । एक ओर भगवान कृष्ण खड़े बाँसुरी बजा रहे थे, दूसरी तरफ मटकी से मक्खन खा रहे थे । चित्रों में केवल

रेखाएँ थी और रेखाओ के कारण ही भाव उत्पन्न हुए थे। मोरपंख और मयूर-हार का शृंगार पाकर गाय-बछड़ो का सौन्दर्य निखर उठा था। नजर दूर करने के लिए दोनों गायों के गले मे ऑगी बॉधी गयी। उस दिन गोवर्द्धन-दलन हमारे बछड़ो ने किया। दूसरे का बछड़ा मॉग कर नही लाया गया। उस दिन हमलोगों ने भोजन करने से पहले गायो को भोग लगाया।

इन दिनों गाय-बछड़े चौक मे न बँधकर छप्पर मे बँधने लगे थे। एक तो जाड़ा पड़ने लगा था, दूसरे चोरों का भय था। उस साल कातिक की फसल अच्छी नही हुई थी। हमारी बाखल मे तीन छप्पर ही थे। एक मे पुराना सामान था, दूसरे मे रसोई होती थी। रसोई के छप्पर मे किवाड़ नही थे। जाडे के दिनो मे हमलोग जिस छप्पर मे सोते थे, उसी के आधे भाग मे खूँटे गाड कर गाय का थान बना, आधे छप्पर मे हमलोग सोते थे। मिट्टी के तेल की जलनेवाली धुएँदार डिब्बी के मन्द प्रकाश से हम उन चारो प्राणियों को निहारते, जो हमारे मानव वश के अंश बन चुके थे। कुछ रात गये चारों बैठ जाते और कान हिलाकर जुगाली करते। जुगाली की आवाज स्पष्ट सुनाई देती। जाड़े के दिनो मे ध्वनि वैसे ही कुछ साफ सुनाई देती है। हमलोग गाय-बछड़ों की सॉस भी सुन सकते थे। उस नये साहचर्य से जाड़े के उन दिनो मे हमे विशेष प्रकार की गर्मी का अनुभव होता था। रात गये जब हमलोग पूर पर से आग ताप कर लौटतेतो दस-पॉच मिनट गाय-बछड़ो को सहलाते। हमारे स्पर्श को वे चारो प्राणी कितने श्रद्धा-प्रेम से स्वीकार करते थे।

दोनो बछडो को प्यार करते समय मॉ प्रायः कहा करती—"दोनो बछडे बैल बनेंगे और रामू-शामू को बहली मे बैठाकर रोज गढ़ ले जाया करेंगे।"

गढ मे हाईस्कूल था। मॉ उसी हाईस्कूल में हम दोनों भाइयों को पढ़ाने की बात सोचती थी। लेकिन न तो हम लोग हाईस्कूल में पढ़ने गये और न बछड़े बैल बनकर हमारी गाड़ी मे जुते।

(४)

दोनो बछड़े बड़े होते जा रहे थे। बछडों का गाय से प्यार कम हो रहा था, लेकिन हमसे उनका वैसा ही लगाव था। उनकी नाक मे रास नहीं

पड़ी थी। गले की रस्सी ही से काम चल रहा था। रग के आधार पर एक बछड़े का नाम नीला पड़ा और दूसरे का गोरा। मै अपने बछड़े को मलखान कहता, छोटा भाई मेरी देखादेखी अपने बछड़े को ऊदल कहकर पुकारता। मलखान और ऊदल अपने-अपने नामो से परिचित हो गए थे। जब इन नामों से उन्हें पुकारा जाता तो दोनो झाँककर देखने लगते। हम लोग पाठशाला से घर लौटते तो दोनो 'बॉ-बॉ' करके उछलने लगते। दोनो बछड़े बँधे-बँधे थक जाते थे और हमलोगो से आशा रखते थे कि उन्हे कुछ देर जगल मे ले जाया जाय।

गायों ने दूध देना बन्द-सा कर दिया था। हमारे घरवाले गायो की उतनी आवभगत नही करते थे। खली-बिनौला-दाना बन्द हो गये। खेत मे जो कड़बी पीली पड गई थी वही उन्हे डाली जाती। कडबी के साथ घास ज्यादा रहती। सूखी घास और पीली सूखी कडबी स्वाद नही लगती थी, लेकिन इसी पर उनका गुजारा चलता। बछड़े पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। उन्हे ज्वार-गाजर खिलाई जाती। घरवालो के इस वर्त्ताव से हमलोग दुखी थे, किन्तु कर क्या सकते थे। हम लोगो ने इस बात की पूरी कोशिश की कि हमारे व्यवहार मे कोई अन्तर न आए। हमारे प्यार मे कुछ वृद्धि ही हुई। हमलोग चोरी-छिपके गायो को ज्वार-बाजरे के भुट्टे-बाल और रोटियाँ खिला जाते।

लेकिन गाये हमारा प्यार ग्रहण करने के लिए अधिक दिन नही रही। प्रति सप्ताह घी लेकर भी सेठजी के रुपये नही उतरे थे। न जाने क्या गोल-गप्पा हुआ। एक दिन सेठ के आदमी दोनो गायो को खोल कर ले गये। पिताजी को बाहर किसी शहर मे कमाने के लिए जाना पडा। बड़े भाई भी उन्ही के साथ गये। घर में तंगी से काम चलने लगा। माँ चिन्ता से उदास रहती। हमलोगों की समझ मे कुछ आता नही था। गाय और पिताजी के जाने से हमारा घर सूना-सूना लगने लगा था। अब केवल दो बछडे रह गये थे। हमने अपना पूरा प्यार उन दोनों पर लुटा दिया। बछड़े भी हम लोगो से खूब हिले थे। हम लोग अपने अवकाश का समय उन्ही दोनों पर खर्च करते। किन्तु एक कठिनाई थी। बछड़े जिस तेजी से बडे हो रहे थे हम उस तेजी का साथ नही दे सकते

थे। मानव वंश का बालक शक्ति और विकास मे पशु वश का साथ नही दे सकता। देखते-देखते दोनो बछडे बैल बनने लगे। हम दोनों भाई उनके सामने नगण्य थे। अब हम उनके साथ धृष्टता नही करते थे। डर लगता, कही मार न बैठें। इस भय ने हमारे और बछडो के बीच भेद की दीवार खडी कर दी।

(५)

एक दिन एक अवाञ्छनीय घटना घटित हुई। गर्मी आ गई थी। बछडो की आयु बारह महीने से कुछ अधिक थी। सीगो की जगह कुछ उभार आ गया था और कोई काली गाँठ-सी चीज चमकने लगी थी—बालो मे से। पिताजी की अनुपस्थिति मे माँ का काम बढ गया था। बाहरी कामो मे मुझे ही आना-जाना पडता था। विवाह-शादियो और बिरादरी के कामो में अपने घर का प्रतिनिधित्व मुझे ही करना पडता था। खलिहान से नाज आ गया था। मूँग-चने का भूसा वही पडा था। माँ भूसा लाने गई थी। दोनो भाई पाठशाला गये थे। पीछे से बछडों ने एकान्त पाया तो रस्सी के साथ जोर आजमाई करने लगे। अन्त में रस्सा टूट गया और दोनों जगल की तरफ निकल गये। माँ घर लौटी तो बछड़े गायब। माँ ने भूसे की पोट चौक में पटकी और खोज देखती बछड़ों के लिए निकल गई। जब हमलोग लौटे तो पूरा किस्सा सुना। मैंने छोटे भाई को वही छोडा और चल दिया बछड़ो को खोजने। गाँव से कुछ दूर पहाड़ी थी, उसी तरफ चला। उस साल हम दोनो भाई जूती नही पहन सके थे। मै नगे पाँव था। खोजते-खोजते दोपहर हो गया। सूरज आकाश के बीचोबीच तप रहा था, लू तो नही चलने लगी थी, लेकिन धरती गरम थी। काँटेदार बेर की झाड़ियाँ और खेतो की बाड ने पाँवों का हाल बेहाल कर रखा था। जमीन पर पाँव पडते ही पाँव का भुर्ता बन रहा था। तलवे किसी तरह मिट्टी पर टिक नही रहे थे। कुछ अँगूठो के बल भरे, कुछ एड़ियो के और कुछ इधर उधर से उठा। लेकिन इस तरह काम कब तक चलता। अन्त में मैंने अपनी धोती का एक पल्ला खोला, उससे दोनो तलवे बाँध, बीच में अन्तर दे दिया। इस उपाय से पाँव का जलना बन्द हो गया लेकिन डग भरना मुश्किल हो गया। उसी समय पहाड़ की तलहटी मे दोनों बछड़े चरते दिखाई

दिये । उन्हें देखते ही मेरे क्रोध का ठिकाना नही रहा । क्या करता, यदि मैं उनपर क्रोध उतारता तो वे दूर भाग सकते थे । नै आड लेकर धीरे-धीरे बढा । दो-तीन ककड हाथ मे लिये और पहाड की तरफ जाकर मैने हॉक लगाई । दोनो बछडे मुझे देख गाँव की तरफ न चल, दाहिनी ओर छलाँगें मारने लगे । मै उनके पीछे हो लिया । पॉव से धोती खुल गई थी । उस उछल-कूद मे मुझे तन-मन की सुध न रही । मै बेतहाशा दौड रहा था । कभी मलखान को पुकारता और कभी ऊदल को, लेकिन दोनो मे से कोई एक भी मेरी तरफ नही देख रहा था । उन दोनों ने पहिली बार स्वतत्रता का परिचय पाया था और वे उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते थे । मै पसीने मे सराबोर था । सॉस फूल आया । मारे प्यास के कठ सूख गया, ओठो पर पपडी जम गई । किन्तु इस पर भी मै पीछा कर रहा था । रुका नही । बछड़े इधर-उधर जहॉ जी चाहता दॉये-बाँये हो रहे थे । कभी-कभी टीबो मे छिपकर अदृश्य हो जाते ।

लगभग दो बजे, डेढ-दो घण्टो की दौड के बाद उन दुष्टो को मुझपर दया आई या न जाने क्यो दोनो सीधे घर की तरफ चल दिये । मै जब घर पहुँचा तो मॉ पौली मे मेरी राह देख रही थी । मेरा हाल देख मॉ के गुस्से का ठिकाना न रहा । वे स्वय थककर लौटी थी । उन्होने चुपचाप दोनो बछडो को बॉधा और फिर लाठी से जो उन्हे धुनकने लगी तो मेरा कलेजा अधर हो गया । मारते-मारते मॉ का सॉस भर आया । बछडो ने चूँ नही की । न उछले—न कूदे । खड़े-खडे पिटते रहे । अन्त मे जब लाठी टूट गई तो मॉ का हाथ रुका । मैने कुछ नही कहा । बछड़ो पर मेरा क्रोध भी कम नही था ।

उस दिन, दिनभर किसी ने बछडों को दाना-दुनका नही डाला । सन्ध्या होने पर मैने चुपके से कुछ चारा डाल दिया था ।

मॉ दिनभर गुमसुम रही । हम दोनों भाइयो से भी नही बोली । शाम को जल्दी भोजन कर, दीपक बुझा सो गई ।

सुबह मॉ ने मुझे जल्दी जगाया । बोली—"इसी समय दोनों बछड़ों को ले जा गढ़ के मेले में । वहॉ जानवरों का मेला भर रहा है, जिस भाव बिके, बेच आना ।

माँ ने मेरे पल्ले दो बासी रोटियाँ बाँध दी। कुछ अचार रख दिया। मैंने अपने एक दोस्त को साथ चलने के लिए बुलाया। हम दोनो अपने बछडो की रास पकड़ उन्हे बेचने चले—उसी मेले मे जिससे पिताजी एक साल पहले उन्हें खरीद लाये थे। जाते समय मुझे किसी प्रकार का खेद या चिन्ता नही थी। बछडे चुपचाप आगे चल रहे थे। मै अपने दोस्त से गप्पे मार रहा था। मार्ग के दोनो ओर नीम-चमेली के ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। अभी धूप तेज नही हुई थी।

इससे पहिले मैंने आदमियो का मेला देखा था, जानवरों के मेले में आने का यह प्रथम अवसर था; और वह भी व्यापारी बनकर। जिसे जहाँ जगह मिली वही अपने जानवर लेकर बैठ गये। हम तक ग्राहक कम ही पहुँचते थे। जो कोई आता, बछड़े के दाँत देखता, सीगो की जगह टटोलता, पूँछ उठाता, भौरी गिनता, खुरो पर निगाह डालता और फिर कीमत पूछता। हमारे बछड़े अच्छी नसल के थे, उनकी चराई अच्छी हुई थी और फिर वे तो हमारी बंदली मे जुतनेवाले थे। मैंने उन्हे हल चलाने के लिए थोड़े ही पाला था। लोग पसन्द करते थे लेकिन हमसे मोल-तोल होता नही था। हमलोग दलालों के चक्कर मे नही पड़े। जो आता पूछता क्या लेगा ? मै जवाब देता तुम्ही कहो क्या दोगे ? खरीदार सभी किसान थे। कोई-कोई मजाक कर देता जिससे मै झेप जाता था। दोपहर हुई। धूप मे तपते रहे। कोई ठिकाने को कीमत लगाता नही था। कोई जोड़ो के तीस लगा कर चला गया, कोई चालीस। चालीस से आगे कोई नही बढ़ा। मेरे लिए तीस-चालीस का अन्तर समझने योग्य नही था; किन्तु मित्र कहता था जोडी के ज्यादा रुपये उठने चाहिए। उधर माँ ने कह रखा था जो कीमत लगे बेच आना। दोनों मे से एक को भी वापस नही लाना।

हमने अपनी पोटली खोलकर एक-एक रोटी खाई। बारी-बारी से प्याउ पर पानी पी आए। दिन ढला, अन्त में एक आदमी आया और सौदा बयालीस रुपयों में तय हुआ।

जानवर बिक जाता है किन्तु उसके बाँधने की रस्सी नही बेची जाती। जानवर को खरीदार अपनी रस्सी से बाँधता है। मैंने बयालीस रुपये गिने,

परखे और फिर धोती के एक कोने मे बाँध अंटी मे खोंस लिये । गले से रस्सी खोल ली और दोनो बछडे खरीदार को सौप दिये । खरीदार ने हमारे मलखान और ऊदल के गले मे रस्सी बाँध कर हाँक लगाई । उस समय तक मुझमें कोई परिवर्तन नही हुआ । चलते समय पहले तो बछड़े जमे रहे लेकिन अनुभवी ललकार सुन चुपचाप चल दिये । जाते समय दोनों ने मुझे जिस करुण दृष्टि से देखा, मैं कह नही सकता । एक वर्ष बाद वे हमसे बिछुड रहे थे । उनकी आँखो मे वही भाव छलक रहा था जो पीहर से पहली बार बिदा होते समय लडकी की आँखो में होता है । मै अपने को नही रोक सका । मैंने दोनों के गले से लिपट कर प्यार किया । मै पुचकारता जाता और रोता जाता । अन्त मे नया मालिक उन्हे ले गया । जब तक दोनों अदृश्य नही हो गए मैं उसी ओर टकटकी लगाये रहा ।

'वर्ष भर तक हमारे घर के प्यार और परिश्रम से पले हुए दो प्राणी अब दूसरे के हो चुके थे और इस प्यार और परिश्रम का समग्र मूल्य, दो मासल प्राणियो की पूरी कीमत थी केवल बयालीस रुपये ।

घर का रास्ता किस तरह कटा; मै ही जानता हूँ । मुँह से एक अक्षर नही निकला ! बछड़ो से रस्से हलके लग रहे थे । बीच बीच मे अनुभव होता जैसे रँस्सो मे झटका लगा है और बछड़े खीच रहे है ।

आँसू सूख चुके थे लेकिन राह भर मेरी सिसकियाँ नही रुकी थी ।

घर पहुँचकर मैंने माँ के सामने चुपचाप बयालीस रुपये और रस्सियाँ रख दी । माँ की निगाह एक बार थान पर और दूसरी बार रुपयों पर गई और फिर फूट-फूट कर रोने लगीं ।

आँसू रोके न रुके ।

पता नही आज वे बछड़े कहाँ होंगे ? है भी या नही ? होंगे तब भी वे बछड़े नहीं रहे होंगे । बूढ़े बैल बन गये होंगे ? लेकिन मेरी स्मृति में आज भी वे मलखान और ऊदल है, मात्र वर्षभर के बछड़े और उनकी याद कुछ क्षणों के लिए कभी-कभी मन को व्यथित कर देती है ।

—×—

कलाकार

"मैं आपके निरीक्षण में चित्रकला का अभ्यास करना चाहती हूँ, कलाकार! मेरी प्रार्थना को आप सदैव टालते आए हैं। अनुमति मिले तो अपना सौभाग्य समझूँगी।"

कमला ने कलाकार के निकट विनीत स्वर में अनुनय किया।

"कमला तुम हो ? चितेरी बनना चाहती हो तुम ?"

कलाकार ने चित्र-पटल पर अकित नारी की दाहिनी भौंह को परिष्कृत करते हुए आश्चर्य-सा व्यक्त किया। तूलिका रुकी नही। वह जानता था, कमला ही होगी। कमला की विनय नयी नही थी। कलाकार के प्रश्न में पहली बार आश्चर्य की ध्वनि थी।

"मैं कला की अधिकारिणी सिद्ध नही हूँगी ?"

"मैंने तुम्हारा अनधिकार तो प्रमाणित नही किया ?"

"आपके आश्चर्य का कोई दूसरा अर्थ भी हो सकता है ?"

"आश्चर्य इसलिए नही कि तुम कला की अधिकारिणी नही हो।"

दक्षिण भृकुटि का परिष्करण समाप्त हो चुका था। भौंह अपनी उज्ज्वल कृष्णता से कलाकार के मन मे सन्तोष उत्पन्न कर रही थी। उसने तूलिका स्वच्छ जल में धोकर फलक पर रख दी। कमला की ओर मुँह करके उसने कहा:

"आश्चर्य का कारण भी सुनो। तुम स्वयं महान् कलाकार की अनुपम कृति हो। भूतल का श्रेष्ठतम चित्रकार तुम्हें अपनी कला का उपकरण बना कर कृतार्थ हो सकता है। यदि स्वय कला कला की उपासना करने चले तो क्या दर्शक को आश्चर्य नही होगा ?"

उत्तर उसके मन मे कई दिनो से चक्कर लगा रहा था। आज अनायास प्रकट हो गया।

कमला उत्तर क्या दे ? इस उत्तर से अकस्मात् उसे अपनी चेतना रुद्ध होती दिखाई दी। जड़ता ने जैसे समस्त इन्द्रियों को जकड़ लिया है और उस पृथ्वी से ही उसका सम्बन्ध टूट गया है, जिस पर वह अविचल बैठी है। उसने

अपने मुख पर कलाकार के प्रखर नेत्रों का स्पर्श अनुभव किया। वह सिहर उठी एक विचित्र प्रकार के रोमांच से। उसके कपोलो पर हलकी-सी लालिमा दौड गयी। मुख का गौर वर्ण अधिक आकर्षक हो गया।

"और यह देखो, अधिकाश चित्रकारो और कलाकारो का बाह्य सुन्दर नही होता। वे अपने इस जन्मजात अभाव की पूर्ति करते है, अपने मानस के सौंदर्य से। प्रकृति और मानव और अन्य प्राणियो मे जो शिव है, जो सुन्दर है, वे उसी से अपने अन्तराल को भर लेने का प्रयत्न करते है। जहाँ जितना अभाव है, पूरक सामग्री वहाँ उतनी ही समाती है। क्या तुम अपने में ऐसा कोई अभाव पाती हो?"

कमला निरुत्तर ही रही। नेत्र झुकाये स्तब्ध बैठी थी वह। उससे ऊपर देखा नही गया।

"चुप हो तुम? क्या कला की जिज्ञासा शान्त हो गई, इतने ही से? क्या तुम यथार्थ मे कला की आराधना करना चाहती हो?"

"कला जीवन का साध्य न बन जाती, तो मै आपसे इतनी बार असफल प्रार्थनाएँ क्यो करती?"

वह अधिक न बोल सकी।

"तब तुम्हे मेरे शिष्यत्व का अधिकार आज से प्राप्त हुआ।"

× × ×

वह परिचितो में कलाकार नाम से प्रसद्धि था। आयु छब्बीस-सत्ताईस वर्ष रही होगी। दुबला-पतला, छरहरा बदन, कुछ लम्बा-सा कद, रग साँवला, आँखे बड़ी किन्तु पुतलियाँ दो विरुद्ध दिशाओं में जाकर मुख की अपरूपता बढ़ा देती थी। सुन्दरता के लिए केवल दाँतों का नाम लिया जा सकता था। जब वह मुस्कराता तब उसकी श्वेत, शुभ्र, दंत-पंक्ति मुख की कालिमा में इस तरह दमक जाती, जैसे काले पत्थर के कूंडे में दही चमकता है। सिर पर बिना किसी प्रयत्न के केश-राशि बढ़ गयी थी अस्त व्यस्त-सी। अस्त-व्यस्तता और सादगी के कारण अपने आप कुछ आकर्षण उत्पन्न हो गया था।

उसे बचपन से चित्रकारी मे रुचि थी। उसके अध्यापक ने उसकी प्रतिभा का परिचय पा उसे बम्बई के कला विद्यालय मे भिजवाया था और वहाँ थोड़े से प्रयत्न के बाद उसकी प्रतिभा चमक निकली। गत चार वर्षो से कमला के घर मे रहता था। चित्र-कला मे उत्तरोत्तर सफलता मिलती ही गई। अनेक प्रदर्शनियो मे उसके चित्रो पर प्रथम पुरस्कार मिले थे। कला के क्षेत्र मे एक विशिष्ट शैली का अवतरण हो रहा था उसके द्वारा और उससे बडी-बडी आशाएँ की जाती थी। कलाकार अपनी कला को सुख का साधन नही मानता था। देश, सस्कृति और इससे अधिक विश्वम्भर के सौदर्य को व्यक्त करने के लिए उसने कला को माध्यम के रूप मे अप-नाया था।

कमला थी सत्रह वर्ष की सुन्दर और स्वस्थ। मझला कद, गौर-वर्ण, सुन्दर आकृति, इन सब विशेषताओ के साथ यौवन की मादकता और उच्च कुल की शालीनता से वह अधिक मनोहर लगती थी। छोटे बालों को अग्रेज़ी ढंग से सँवार कर वह पीछे की ओर फैला लेती थी। वेश-भूषा मे पाश्चात्य रंग था, किन्तु हाव-भाव और आचरण मे उसे भारत की परपरा से अनुराग था। उसके भोलेपन मे यौवन की चचलता खो-सी गई थी।

आयु के पन्द्रह वर्ष मे उसने मैट्रिक परीक्षा पास की। जब वह मैट्रिक मे थी, कलाकार उनके घर मे आया। घर बडा था, तीन-चार चौक थे, कला मे रुचि रखने से कमला के पिता ने उसे अपने घर के बाहरी भाग मे एक कमरा दे दिया था।

घर मे कमला को लाड-प्यार, सुख-स्नेह सब कुछ प्राप्त था, किन्तु उन दिनो उसे अपने मे कुछ रिक्तता अनुभव होने लगी। रिक्तता की अनुभूति तीव्र होती गई। कलाकार की कृति और उसके चित्राकण को देख उसे संतोष मिलता। समय बिताने और जी बहलाव के लिए वह उस कक्ष में चली जाती। कलाकार को ज्ञात न होता, वह कब आई और कब गई। वह योगी की भाँति, संसार के समस्त आकर्षणो से दूर, मुक्तात्मा के समान अपनी साधना मे लीन रहता, उसे तन-मन की सुध भी नही रहती। कमला की उत्सुकता चित्रो की

अपेक्षा कलाकार की तन्मयता में अधिक थी। उसकी चेतना इतनी विकल हो उठती कि वह किसी कार्य मे अपने को विलीन कर देना चाहती। कलाकार के चित्र उसे सान्त्वना देते। और मैट्रिक पास करने के बाद उसने कालेज मे नाम न लिखाकर कला विद्यालय मे नाम लिखाया।

एक डेढ साल तक विद्यालय में अभ्यास करने पर वह आकृतियाँ व्यक्त करने लगी थी। रेखा और रग का शास्त्रीय ज्ञान भी थोडा-बहुत हो गया था। फिर भी उसने अनुभव किया विद्यालय के अध्यापको से सीखी हुई कला निश्चित रेखाओं की बन्दिनी है। उसने कलाकार के कक्ष में कला को मुक्त उडान भरते देखा था। नियमो मे बँधी कला अपने पर फड़फड़ाकर रह जाती थी, वह अपना अस्तित्व खो देती थी। इसलिए कमला ने कई बार कलाकार से प्रार्थना की थी।

× × ×

दूसरे दिन कमला सपूर्ण उपकरणो के साथ कलाकार के कक्ष मे पहुँची। राजस्थानी, कांगड़ा, मुगल, आधुनिक बगला तथा पाश्चात्य शैली के चित्र-संग्रह थे। रंग-बिरंगे छोटे-बडे, कई आकार के कागजी गत्ते के टुकडे थे, कई प्रकार की तूलिकाएँ कुछ हाथी दाँत की, कुछ चाँदी की और कुछ सीधी-सादी। भाँति भाँति के रंग।

"इन सब का क्या बनेगा, कमला? इतना भार देखकर बेचारी कला डर से भाग न जायगी?"

"क्या इस सामग्री की आवश्यकता नही है? विविध शैलियों के चित्रों मे कौन रंग कितनी मात्रा में प्रयुक्त हुआ है, इसके मापने के लिए कार्ड बोर्ड के टुकडे बड़े सहायक होते है। समान वर्ण के टुकड़ों की सहायता से सरलतापूर्वक जान जाती हूँ कि वह रंग कितनी मात्रा मे प्रयुक्त हुआ है। इनमें से एक चीज भी निरर्थक नही।"

"अनुकरणशीलता ने कभी मौलिक प्रतिभा का विकास नही किया, कमला। तूलिका और रंग-पात्रों के अतिरिक्त दूसरी चीज़ों का बहुत कम महत्त्व है। स्वस्थ मन से बैठ जाओ। तूलिका पास रख लो, सामने चित्र-पटल हो। मन

किसी सुन्दरतम वस्तु पर एकाग्र करो। यह ध्यान में रहे, तुम उसी कल्पना को मूर्त कर सकोगी जो तुम्हारे अन्तस्तल के अन्तर्भाग में समा चुकी हो, जिसने तुम्हारे हृदय को पूर्णतया अभिभूत कर लिया हो, जो व्यक्त हुए बिना तुम्हे चुप नही बैठने देती, तुम्हें सोने नही देती। फिर चाहे वह पत्थर का टुकडा हो या हीरे की कनी, उच्च अट्टालिकाओ और महलों की अलकृत राज-राजेश्वरी हो या किसी फटेहाल मजदूर की हृदयेश्वरी अथवा चिथड़ों मे लिपटी अभाव की प्रतिमूर्ति भिखारिन। जब तुम अपने मन को उसमें लीन कर दोगी, वह तुम्हारी तूलिका से व्यक्त हो जायगी। उसमे तुम्हारे प्राणो का स्पन्दन होगा और होगी तुम्हारे रक्त की उष्णता और आवेश की अभिव्यक्ति। इतना पाठ आज के लिए प्रर्याप्त होगा। सीखने का प्रयास करो।"

कई दिन बीत गए। नए ढंग की कला-साधना में सफलता प्राप्त हुई। कमला स्वयं अंकन करने लगी। कलाकार के चित्रो का सूक्ष्मता से निरीक्षण करती।

कुछ मास बाद उसने अनुभव किया, कलाकार के चित्रो की मौलिकता जैसे कही अटक गई है। भिन्न-भिन्न दृश्यो में समानता दिखाई देती, हिमाच्छादित कैलाश और अतल-तल वाले क्षुब्ध सागर के चित्रण मे अद्भुत समता झलकने लगी। नारी के जो चित्र अब अंकित हो रहे थे, उन विविध आयु, वर्ण, वेश-भूषा युक्त नारियो के विभिन्न परिधानों और अलंकारो मे से उसे एक ही हृदय झाँकता दिखाई दिया। कमला को आभास हुआ, जैसे उसका हृदय ही उन सब मे प्रतिबिम्बित हो रहा है और इस आभास मात्र से ही उसने अपने हृदय में अनेक बार कपन-सा अनुभव किया। कलाकार के सम्मुख विचार उपस्थित करने पर उसे उत्तर मिला—

"हमारे अनुभव में बहुत-सी चीजें आती हैं। हम अधिकाश वस्तुओ को भुला भी देते है। कभी हमारी इन्द्रियाँ ऐसे विषय का साक्षात्कार करती हैं कि वह हमारे अंतस्तल में समा जाती है। हमारा चेतन और चेतन से अधिक अवचेतन मस्तिष्क उस वस्तु से इतना अभिभूत हो जाता है कि अनेक प्रतिच्छायाओं के प्रविष्ट होने पर भी वह अनजाने उस एक वस्तु के चारों ओर गति-

शील रहता है। हमारा मन अज्ञात रूप से उसके घेरे मे बँध जाता है और वह किसी दूसरी वस्तु की ओर प्रयत्न करने पर भी अग्रसर नही होता। अनायास वह ग्रहीत वस्तु कृतियो मे व्यक्त होती रहती है और व्यक्त होकर भी हमें प्रतीत होता है, जैसे उसका बहुत बडा अश अन्दर ही बच गया है और अव्यक्त रहकर दूसरे दृश्यों को भी वह उभरने मे रोकता रहता है। क्या काव्य मे, क्या चित्रकारी मे और क्या नृत्य कला मे और क्या संगीत मे इस नियम की अनुवृत्ति स्पष्ट दिखाई देगी।"

कमला सम्पूर्ण अर्थ को ग्रहण न कर सकी।

× × ×

गर्मी के दिन थे। सध्या को कुछ बादल हो आये थे। उमस-सी थी। कमला ने इस समय एक चित्र पूरा किया। उसने कोने में अपना नाम लिखा और संतोष तथा गर्व का पुट मिलाकर उच्चारण किया।

"यह कृति आपकी सेवा में समर्पित है। अब तक मेरी रचनाओं मे मुझे यह चित्र श्रेष्ठ लगता है।"

"हाँ, चित्रग बुरा नही है। रही अच्छी लगने की बात, रचियता को अपनी प्रत्येक नवीन रचना से संतोष ही मिलता है। यदि वह स्वयं ऐसा न समझे तो कुछ नवीन बना ही नही सकेगा और अपनी पुरानी रचनाओ से संतोष मान बैठेगा। प्रत्येक नई रचना अपने नयेपन से रचियता को अपनी उत्तमता की ओर आकर्षित करती है। इस चित्र में तुमने अबोध बाला, चौदह पन्द्रह वर्ष की लडकी का चित्र खीचा है। चित्र के उच्च मार्ग पर वृद्धा की छाया-सी अकित करो जो क्षितिज मे लीन होना चाहती हो।"

"तब चित्र की शोभा ही नष्ट हो जायगी। पूरे वातावरण में विषाद छा जायगा।"

"नही, इस षोड़शी बाला का सौंदर्य अधिक खिल उठेगा। कलाकार सृष्टि के दो विपरीत तत्वों को एक स्थान पर प्रस्तुत करके तुलनात्मक दृष्टि से अपनी अभीष्ट वस्तु का सौंदर्य दर्शक के मन मे अंकित कर देता है।"

सूर्य अस्त हो रहा था। पश्चिमी क्षितिज से बादलो से कुछ तिरछी होकर आने वाली सुनहरी किरणो में आसपास का सारा वातावरण रंगीन हो गया था।

"आपका आदेश स्वीकार है। मेरी भेंट आपने इस सशोधन के साथ स्वीकार कर ली न?"

"हाँ, धन्यवाद के साथ।"

कमला के मुख पर सतोष की आभा दौड़ गयी। उसका प्रयत्न सफल हो गया। सध्या के स्वर्णिम प्रकाश मे उसके गौर मुख की आभा अद्भुत रूप से आकर्षक लग रही थी। कलाकार उसके मुख की ओर एकटक देखता रहा, देखता ही रहा। कुछ देर बाद उसने कहा

"कमला, मै तुमसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।"

"प्रार्थन ही क्यों, आप आदेश देने के अधिकारी है।"

"प्रार्थना नही, आदेश ही सही। मै तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूँ।"

"मेरा सौभाग्य। किन्तु इस अकिचन पर अपना अमूल्य समय क्यो लगाते है? मेरे कारण आपकी कला गौरवान्वित नही होगी।"

"इसकी निर्णायक तुम नही हो। कितने दिनों से मेरे हृदय में एक छाया घूम रही है। आज इस सान्ध्य प्रकाश में वह छाया जैसे तुममे साकार-हो गई है। पटल पर अंकित होने के लिए वह मुझे विकल बना रही है।"

"तब मुझे आपत्ति नही।"

× × ×

चित्र बनकर तैयार हो गया। परिष्करण समाप्त करते हुए कलाकार ने ओठो मे लालिमा लाने के लिए अतिम बार तूलिका उठाई। उसने अपनी दृष्टि चित्र पर डाली। दूसरे क्षण सारा चित्र आँखों के आगे घूम गया। अंकित प्रतिमा अपने निरावृत्त हृदय से कलाकार के साथ संलाप कर रही थी। कलाकार के नेत्र चमके। उसने सतोष की साँस ली। आकृति पर मुस्कान दौड़ गई। उसकी आँख की कोर से आँसू की नन्ही बूँद ढुलक गई। आँसू की तरलता ले उसने एक कोने मे अपना नाम लिखा। उसने बार बार चित्र को

निहारा—निकट से, दूर से, दाएँ-बाएँ से, सारी त्रुटियाँ दूर हो चुकी थीं। कलाकार को सतोष था फिर भी उसे लगा, जैसे हृदय में बसा हुआ सौंदर्य पूरी तरह व्यक्त नहीं हुआ है। अभी कुछ शेष है, जो इस फलक पर नही आ सका, नही आ सका। चित्र पर आवरण डालकर उसने कमला को बुलाया।

जब से चित्र बन रहा था कलाकार के कक्ष में कमला के प्रवेश पर प्रतिबन्ध था।—"कमला, इस चित्र का उद्घाटन तुम्हारे हाथो होगा।"

कलाकार का अनुरोध था।

कमला खड़ी रही। उत्सुकता प्रेरित कर रही थी, उसी क्षण आवरण हटाकर वह अपने चित्र को देख ले; किन्तु साहस नही होता था। वह अपनी उत्सुकता दबाये खड़े रही।

"हाँ, आगे बढ़ो, कमला। निरावृत्त करो इस चित्र को।"

"नही यह कार्य आपका है।"

"भूलती हो कमला ! निर्माता उपभोक्ता नही बन सकता। यदि निर्माता उपभोक्ता बनने की लालसा करे तो वह अपने निर्माण का अधिकार खो बैठेगा। मेरा अनुरोध, तुम्हारे गुरु का आग्रह स्वीकार करो।"

कमला जैसे विवश, ठिठकती हुई आगे बढ़ी। धीरे से आवरण हटाकर उसने चित्र देखा। चित्र के पार्श्व-भूमि मे कुछ नही था। ऊपर उड़ते हुए दो-चार मेघ-खड अस्तंगत सूर्य की किरणो से दीप्त थे। मुख पर कुछ स्वर्णिम आभा थी। दाहिनी हथेली पर मुँह टेके, बड़ी-बडी सुन्दर आँखो से जैसे बोलना ही चाहती है। कमला ने आइने मे अपने आपको इतना स्पष्ट नही देखा था। उसने देखा, जैसे उसका रूप अपरिवर्तित अवस्था मे उसके सम्मुख साकार हो गया है। यह चित्र यथार्थ है और वह स्वय जैसे छाया मात्र है।

कमला का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। अपने दोनो हाथ जोड़कर वह कलाकार के सम्मुख नत हो गई। अभिवादन के लिए कोई शब्द न निकल सका। नत-नयन कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे। कुछ क्षण बीत गये। उसने कहा—

"यह चित्र मेरे पास रहेगा गुरुदेव।"

"नहीं, कमला, तुम्हें यह नहीं मिलेगा।" कलाकार ने कहा।

"आप अनेक चित्र बना लेगे। मेरे पास तो यह एक ही रहेगा। यह कितना अनुपम है।"

"मेरे निकट भी यदि यह अनुपम न होता तो मै तुम्हें इस रूप में अंकित न कर पाता। यथार्थ पर मेरा कोई अधिकार नही, यथार्थ को छाया से मै व चित न रहूँ। प्रतिच्छाया मेरे सतोष का कारण बने।"

"आप क्या कह रहे हैं?" कमला के स्वर में वेदना थी।

"हाँ, ठीक ही कह रहा हूँ। कोई भूल नही कर रहा हूँ। क्या आज तुम बता सकती हो, तुम्हारे जीवन में मेरा क्या स्थान हे? मैंने आज तक ज्ञान-दान दिया, उसकी भेंट तुम क्या दोगी?"

"मेरे हृदय में जिन व्यक्तियों ने स्थान बनाया है, उनमें आप का स्थान सर्वोच्च है, गुरुदेव। इतना ऊँचा कि मैं पूर्ण प्रयत्न करके भी आपके चरणो का स्पर्श नही कर पाती। मेरे निकट आप उत्तरोत्तर महान बनते चले गये है। यदि भाषा हृदय के भाव व्यक्त करने मे समर्थ होती तो मै कहने का साहस कर जाती। विवश हूँ। रही भेंट की बात, मैं अकिंचन क्या दूँ? आपकी कृपा का मूल्य क्या चुकाऊँ? उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने को सामर्थ्य भी नही है मुझ में। हृदय मे जितनी श्रद्धा है, जितना आदर है, उस सबसे मैं आपकी अर्चना कर सकती हूँ।

"केवल श्रद्धा!" कलाकार ने कहा।

"मेरे पास और है ही क्या गुरुदेव? मुझ पर विश्वास कीजिए।"

× × ×

दूसरे दिन कमला ने देखा, कलाकार अपने कक्ष मे नही है। अनेक चित्र, चित्रांकण के उपकरण इधर-उधर बिखरे थे। नही था कमला का चित्र। कमला स्तब्ध रह गई और सम्भवतः जन्मभर यह स्तब्धता उसका साथ नहीं छोड़ेगी।

और इधर कलाकार केवल कमला के चित्र का अवलम्बन लेकर दूसरे स्थान पर पहुँचा, अब भी भावावेश में वह कभी तूलिका उठाता, कुछ रेखाएँ

खीचता; किन्तु उन रेखाओ में कोई आकृति न होती । कल्पना धुँधली-सी रह जाती । कुहरा हटता नही था । वह भूल गया कभी वह चित्रकार था। फेंक दी उसने तूलिका और फोड फेंके रग के पात्र। एकमात्र कमला का चित्र उसके साथ था । वह उस चित्र की ओर देखकर किसी खोई हुई चीज को पाने की चेष्टा करता । किन्तु चित्र केवल रंग और रेखाओ के अतिरिक्त कोई भाव-पूर्ण आकृति प्रकट न करता । चित्र मे अपने नाम के अक्षरो को देखकर उसके मस्तिष्क मे एक तूफान उठ खडा होता, और दूसरे क्षण ही साँय-साँय होने लगती ।

उसे याद आता वह कला का उपासक था । सिद्धि उसके निकट आ गई थी

स्वर्ग और नर्क

कलियुग मे और विशेषकर इस बीसवी सदी मे यमराज को अपने स्वभाव मे बहुत से परिवर्तन करने पडे । इस सृष्टि को बने, पुराणो के अनुसार लगभग दो अरब वर्ष हो रहे है और इस कलियुग से पहले अट्ठाइस बार सतयुग, अट्ठाइस बार त्रेता, अट्ठाइस बार द्वापर और सत्ताइस बार कलियुग आये और गये, किन्तु इस प्रकार की समस्याएँ उनके सामने कभी उपस्थित नही हुई थी ।

बात यह है कि इन सौ वर्षों मे नरक में ऐसे-ऐसे व्यक्ति पहुँचने लगे जो वहाँ कभी देखे नही गये थे । यमराज और यमदूतो को बडी प्रसन्नता हुई थी इन लोगो को देखकर। उनकी प्रसन्नता का कारण यह था कि इस शताब्दि में पहले से ज्यादा लोग उनके राज्य मे बसने के लिए पहुँचे थे । नरक जाने वाले लोगों की सख्या इतनी अधिक पहले कभी नही थी । इसके अलावा प्रसन्नता का एक दूसरा भी कारण था । नरक मे जो लोग इस समय पहुँच रहे थे वे बहुत ही सभ्य और अनुशासन को मानने वाले थे । पहले जो लोग नरक मे पहुँचते थे, वे नरक द्वार तक तो क्या वैतरणी के किनारे से ही रोने-चिल्लाने लगते थे । यमदूत उन्हे नाग-फाँसो में फाँसकर घसीटते हुए ले जाते थे । जब चित्र-गुप्त उनका लेखा-जोखा देखने लगता तो वे चीख-चीख कर नरक-अधिकारियो के कठोर हृदयो को दहला देते थे । और जब उन्हे दण्ड देने के लिए दंड-स्थल पर भेजा जाता था उस समय के करुण दृश्य को चित्रित करने में गरुड़-पुराण के लेखक व्यासजी भी असमर्थ रहे है ।

किन्तु इस शताब्दि के लोग ही निराले है । यमदूतो को नागफास डालना नही पड़ता । बड़ी प्रसन्नता से लोग नरक-द्वार मे प्रविष्ट होते है और नरक के अधिकारियो का बड़ी निर्भयता से अभिवादन करते है । क्या मजाल उनके चेहरों पर कभी उदासी देखी जाए । निश्छल और शान्त भाव से पग रखते है । छाती तनी रहती है । चित्रगुप्त के सामने बड़ी निर्भयता से जीवन का पूरा वृत्तान्त सुनाते हैं और जब चित्रगुप्त उन्हे दंड सुनाता है तो धन्यवाद कह कर यमदूत के साथ चल देते है ।

नरक के इन यात्रियो का यह बर्ताव आश्चर्यजनक नही है । नरक मे शिक्षित लोगों की सख्या बढ़ती जा रही है । बडे-बडे वैज्ञानिक वहाँ पहुँच रहे हैं, जिन्होने बारूद से लेकर अणुबम बनाने तक अपनी बुद्धि का उपयोग किया है, जिन्होने साइकिल से लेकर बाम्बर हवाई जहाज तक बनाने मे सहायता पहुँचाई है । बडे-बडे डाक्टर और जीव-शास्त्र-विशारद है, जिन्होने कुनैन से लेकर कीटाणु बम तक बनाने मे अपनी चतुराई प्रदर्शित की । महान इजोनियर बडे-बडे बाँधो का निर्माण करके हिसा के भागी हुए, वहाँ पहुँचे । फिर बड़े-बडे दार्शनिक थे, जिन्होने अपनी बुद्धि का उपयोग पूर्ववर्ती दार्शनिको की तरह ईश्वर की खोज मे न लगाकर मानव-समाज के मूल-तत्व के अनुसन्धान और विकास में किया। बड़े-बडे कवि पहुँचे जिन्होने हरि का कीर्तन न करके फूलो और षोडशी के चेहरे का गुण-गान किया था । सिनेमा के अभिनेता और अभिनेत्रियाँ तथा सूत्र-धार, सङ्गीतज्ञ, बड़े-बडे नर्त्तक मतलब यह कि वर्तमान सस्कृति और विज्ञान ने जितने प्रकार के लोगों की सृष्टि की है वे सब वहाँ एकत्रित होने लगे । एक से एक विद्वान एक से एक साहसी जो दिन को रात बनाने की बात सोचें और रात को दिन । एक से बढ़कर एक कलावन्त और गुणवन्त । सभी विषयों में पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए । यदि उन्होंने अनुशासन और धैर्य का परिचय दिया तो नरक के अधिकारियों को आश्चर्य हो सकता है, इस मर्त्य-लोक के निवासियो को तब आश्चर्य होता जब ये लोग अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता और गम्भीरता को छोड़ देते हैं ।

इन लोगों के नरक में पहुँचने से स्वाभाविक था कि शुरू-शुरू में नरक के अधिकारी कुछ चौकन्ने होते । अब तक वे लोग बात-बात में अपनी प्रजा को डाँटना कर्त्तव्य समझते थे और सदियों के अभ्यास के कारण बहुत क्रूर बन चुके थे । किन्तु मनुष्य की नम्रता और शिष्टता भी तो कोई चीज़ होती है । शीघ्र ही इन गुणों का असर नरक के अधिकारियो पर होने लगा । इसके अलावा मनोवैज्ञानिक अपना काम पूरी शक्ति लगाकर कर रहे थे । जो लोग दंड देने के लिए नियुक्त थे क्रूर चाहे कितने ही हों किन्तु थे बहुत ही निम्न स्तर के । मनोवैज्ञानिको ने उनकी क्रूरता को दूर करने के लिए प्रयोग शुरू किये । यम-

दूतों पर इस प्रयोग का आश्चर्यजनक प्रभाव पडा । दूसरी तरफ उन्नीसवी और बीसवी सदी के महान राजनीतिज्ञों ने अपना काम शुरू किया । नरक का शासन बहुत ही त्रुटिपूर्ण था । बात-बात पर दंड और शक्ति का प्रयोग । अरबों वर्ष तक शक्ति का प्रयोग करते-करते नरक के अधिकारी भी तंग आ गये थे । इन नवागत राजनीतिज्ञों की बात पर पहले तो किसी ने ध्यान नही दिया किन्तु धीरे-धीरे यमराज को उनकी बाते अच्छी लगने लगी । उसने अपनी प्रजा पर विश्वास करना शुरू किया और हरेक काम स्वय करने की अपेक्षा अपनी जनता को भी बहुत-से अधिकार दे दिये ।

इधर नरकवासियो में बहुत-से ऐसे लोग पहुँच गये थे, जिन्होंने जन-आन्दोलनो मे अपना जीवन बिताया था । उन्होने नरक की प्रजा मे धीरे-धीरे जाग्रति उत्पन्न की । यमराज को भी इसी में भलाई दिखाई दी कि वह नवागत लोगों का सम्मान करे । अब उसके चेहरे पर क्रोध की तेवरी कभी-कभी दिखाई देती थी । चेहरे पर हरदम प्रसन्नता रहने लगी । यह परिवर्तन सबसे अधिक अच्छा लगा यमराज को पत्नी को जो आतकपूर्ण चेहरे को देखकर हमेशा थर-थर काँपती थी ।

नरकवासियो ने कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त की तो उन्होने सारी बुद्धि और प्रतिभा का उपयोग नरक की उन्नति मे किया । प्रत्येक व्यक्ति नरक के उत्थान में लग गया । कलाकारो ने नरक को सजाना शुरू किया । पहले वहाँ प्रत्येक स्थान पर भयोत्पादक और बीभत्स दृश्य दिखाई देते थे, कलाकारों ने सुन्दर-सुन्दर मूर्तियों और चित्रो से सार्वजनिक स्थानों को सजा दिया । जहाँ रात-दिन मारो-मारो, काटो-काटो और हाय-हाय की आवाजें आती थी वहाँ नूपुरों की झंकार और राग-रागनियो के अलाप सुनाई देने लगे । इजीनियर और वैज्ञानिक सबसे आगे थे । इतनी कुशलता उन लोगों ने पृथ्वी पर भी नही दिखाई थी । सबसे पहले रौरव और महा रौरव नरक के सुधार की बात चली । वहाँ सुई से भी अधिक तीक्ष्ण मुखवाले कीड़े किल-बिलाते थे । इस नरक के निवासियों का मांस ये कीडे कुतरते रहते थे । इस नरक के वैज्ञानिकों ने उपलब्ध साधनों से एक घोल तैयार किया । घोल के छिड़कते ही एक भी कीडा बाकी नहीं बचा ।

कुंभीपाक नरक मे रहने वाले वैज्ञानिक भी चुप नही रहे। उन्होंने खौलते हुए कड़ाहों से भाप तैयार की और भाप से बड़े-बड़े कल-कारखाने चलने लगे। कुंभीपाक नरक मे इतनी बिजली तैयार होने लगी कि वही नही यमलोक के सभी नरकों मे प्रकाश पहुँचाया गया। बिजली के उत्पादन से नरक में वैज्ञानिक प्रगति बड़ी तेज़ी से होने लगी। बड़-बडे प्लाण्ट लगाये गये। उनसे सभी चीजो का उत्पादन होने लगा। नरक लोक में पृथ्वी लोक की अपेक्षा एक विशेषता और थी। वहाॅ वैज्ञानिक साधनों पर पूँजीपतियो का अधिकार था और बहुत समय तक इन साधनों से लोग व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से लाभ उठाते रहे। किन्तु नरक लोक में आरम्भ से ही ऐसी कोई भावना नही थी। यहाँ कि प्रगति का श्रीगणेश अपने संकटो को दूर करने के लिए हुआ था, अतः उसमें किसी प्रकार की प्रतिद्वन्दिता या संघर्ष नही था, हाॅ स्पर्धा अवश्य थी और वह भी इस बात मे कि नरक को अधिक से अधिक सुखी बनाने के लिए कौन कितना अधिक कार्य करता है। इसलिए नरक लोक में पृथ्वी की अपेक्षा विज्ञान ने शीघ्र ही और अधिक उन्नति की।

इंजीनियरो ने तो कमाल ही कर दिया, नरक के यात्रियों को वैतरणी नदी मे बहुत कष्ट होता था, वैतरणी पर स्वर्ग जाने के लिए बाल से भी बारीक पुल था, जिस पर चलते समय अधिकाश लोग नदी मे गिर जाते थ और लाखों मे कोई एक हरि-कृपा से स्वर्ग मे पहुँचता था। नरक के इन इंजीनियरों ने स्वर्ग के पुल को ज्यों का त्यों रखा किन्तु पृथ्वी से नरक में आने के लिए एक अच्छा और मज़बूत पुल तैयार हो गया। पुल के मुहाने पर ही ट्राम, मोटरे और बसे खड़ी रहती थी जो मृत-आत्मा के पहुँचते ही उसे तुरन्त नरक मे पहुँचा देती थी। नरक-निवासियों ने नवागन्तुकों के लिए एक स्वागत-केन्द्र बना रखा था, जहाँ एक विशेष अधिकारी उसका परिचय लिख लेता। उसे यमराज के सामने उपस्थित किया जाता और फिर उसकी योग्यता के अनुसार काम बता दिया जाता। यमराज अब केवल वैधानिक शासक थे, पूरा काम तो वहाँ के निवासी मिल-जुल कर करते थे।

नरक मे निवास का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया, सत्तर-सत्तर मंजिल

के मकान। अलग-अलग फ्लैट और हर फ्लैट का अपना झूला। बटन दबाया ऊपर चढ़ गये, बटन दबाया नीचे आ गये। वैतरणी नदी पर जगह-जगह बाँध बाँधे गये, जहाँ से नहरें निकाली गई और बिजली तैयार होने लगी। नरक के बड़े-बड़े नगर रात मे विद्युत प्रकाश में उल्लसित दिखाई देते। हवाई जहाज उड़ने लगे, रेलें दौडने लगी। दस-पन्द्रह वर्ष मे ही कायापलट हो गई।

इस उन्नति से यमराज और उसके दूतो को भी कम प्रसन्नता नही हुई। पहले यमराज को भैसे पर सवार होना पडता था। जब वह भैंसे पर निकलता था तो कितना भद्दा लगता था। भैंसा फुदकता हुआ चलता था। उस समय यमराज की परेशानी देखने लायक थी। किन्तु अब वह भैंसा उस जगह भेज दिया गया जहाँ पुरानी चीजों को स्मृति के लिए रखा गया था। अब यमराज के पास एक दर्जन बढिया मोटरे थी और हवाई अड्डे पर उसके लिए एक चार्टर्ड हवाई जहाज हमेशा प्रतीक्षा किया करता। प्रत्येक यमदूत को भी एक मोटर मिली। अब उन्हें पैदल नही चलना पड़ता।

यमदूतों का स्वभाव बदल गया। विद्वानो ने नरक-लोक में पाठशालाएँ खोल दी थीं। यमदूत भी नियमित रूप से पढने लगे। यमदूत ही क्या यमराज ने भी अपनी पत्नी के साथ एक प्रौढ़ स्कूल में नाम लिखा लिया था।

नरक-लोक की यह उन्नति स्वर्ग-निवासियो से छिपी न रह सकी। रात को जब नरक में बिजली का प्रकाश होता तो स्वर्गवासी सोचते यह चाँद से भी सुन्दर और तारा-लोक से भी ज्यादा देदीप्यमान लोक कहाँ से आ गया। देवता और वहाँ के अन्य निवासी नरक-लोक की उन्नति देख-देख कर बहुत ईर्ष्या करने लगे। नरक मे जैसे बाग-बगीचे लगे थे उनकी समता नन्दन वन भी नहीं करता था। नन्दन-वन में कल्पवृक्ष था, किन्तु मनुष्य के श्रम से जो चीज पैदा हो सकती है, वह वहाँ नही थी। नरक-लोक की सभा में जो चहल-पहल और उत्साह था वह सुधर्मा सभा मे देखने को भी नही मिल सकता था।

इससे पहले भी मनुष्य की उन्नति को देख कर देवता लोग चिन्तित हुए थे, किन्तु इस बार देवताओं को कोई मार्ग सुझाई नही दिया। जब कभी कोई मनुष्य उन्नति करता था इन्द्र अपनी मेनका, रम्भा, उर्वशी या किसी अप्सरा

को भेजकर निश्चिन्त हो जाता था, किन्तु इन्द्र ने देखा ये लोग विश्वामित्र और शुकदेव से भिन्न हैं । उनके साथ पहले ही स्त्रियाँ हैं जो अप्सराओं से किसी बात में कम नहीं । विशेषता यह कि उन स्त्रियों में परिश्रम के कारण ऐसा स्वास्थ्य था जिसने उनकी खूबसूरती और कोमलता में चार चाँद लगा दिये थे । इन्द्र को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि नरक का परिश्रमशील मानव इन हवा में उड़ने-वाली, छुई-मुई-सी कोमल, दुबली-पतली, सुडौल आँख-नाक किन्तु रक्तहीन चेहरों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा । स्वय अप्सराएँ नरक के स्वच्छ और सुन्दर मनुष्यों की ओर आकर्षित थी किन्तु वे वहाँ के श्रम को देखकर इतना घबराती थी कि जाने का साहस नहीं होता था ।

देवताओं ने इस बात की खोज-बीन की कि क्या स्वर्ग में भी कोई ऐसा व्यक्ति आया है जो स्वर्ग को नरक की तरह उन्नत कर सके । किन्तु वहाँ एक भी आदमी नहीं था । बात यह है कि स्वर्ग में बहुत कम लोग पहुँच पाते हैं । दो-चार सौ साल में मुश्किल से कोई माई का लाल वहाँ पहुँच पाता है । फिर स्वर्ग के इस यात्री में अद्भुत गुण चाहिए केवल परब्रह्म परमेश्वर से लगन लगाने वाला, दिन-रात हरि-स्मरण करने वाला, राग-द्वेष-रहित, सकल कामनाओं से परे, स्वार्थहीन, माया-ममता में न रमनेवाला, प्राकृतिक सुख-सुविधाओं से घृणा करने वाला व्यक्ति ही स्वर्ग में पहुँच सकता है । बीसवी सदी के कलाकार, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, कवि, चित्रकार, सगीतज्ञ, चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षा-विशेषज्ञ आदि के लिए स्वर्ग में स्थान कहाँ ? वहाँ तो ऐसा आदमी जा सकता है जिसने पार्थिव पदार्थों से सदा घृणा की, तर्क और शास्त्र-चर्चा को श्रद्धापूर्वक माना, जो कभी पढ़ने-लिखने नहीं गया और कुछ पढ़ा-लिखा भी हो तो उसे पूरी तरह भुलाकर किसी गुरु की सगति की हो, जिसका ध्यान सासारिक वस्तुओं पर कभी नहीं गया हो और कभी गया भी हो तो सब कुछ माया समझ कर या माया में ब्रह्म का दर्शन करके जिसने मुक्ति-पथ का पाथेय जुटाया हो । देवताओं के मुख से नरक-लोक की बड़ाई सुन-सुन कर स्वर्ग-वासियों में असन्तोष उत्पन्न हुआ और उनमें बेचैनी होने लगी । देवता लोग तो स्वर्ग के आदी थे, किन्तु जो लोग पृथ्वी लोक से आये थे वे अटपटापन अनुभव

करने लगे । यह सत्य था कि कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि उनकी प्रत्येक इच्छा को पूरा करती थीं, किन्तु उन्हें काम करने का अवसर तो नहीं मिलता था । उनकी बुद्धि सो गई थी । और क्रिया-शक्ति मर चुकी थी । सब कुछ दूसरों के बल पर होता था । और अपने आप मिलने वाली चीज से शरीर को आराम मिल सकता है, किन्तु मन में सन्तोष और शांति कभी उत्पन्न नहीं हो सकती । स्वर्ग लोक के निवासी नरक में जाने की इच्छा करने लगे, किन्तु बहुत दिनो तक पिंजरे में रहने वाला तोता पिंजरे के बाहर निकल कर भी उड़ नहीं सकता । स्वर्गवासियों के मन में देवताओं का आदर दिन-दिन कम होने लगा । पृथ्वी लोक में शिक्षा का प्रचार इतना बढ रहा था कि वहाँ से कोई स्वर्ग में आता ही नहीं था । जो कोई भूला-भटका स्वर्ग की ओर मुँह भी करता तो पुल पर खडे नरक के स्वागत अधिकारी उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते ।

स्वर्ग लोक से पृथ्वी पर एजेंट भेजे गए । स्वर्ग का सुन्दर से सुन्दर चित्र खींचा गया । सब को बताया गया, माया में लिप्त मत हो, 'तन कागद का पुतला' है किन्तु कोई ज्ञान-विज्ञान को छोड़ कर स्वर्ग की कामना ही नहीं करता था ।

देवताओं की चिन्ता बढ़ती गई, लेकिन उपाय दिखाई नहीं देता था । यमराज को पत्र पर पत्र भेजे गये—यह सब क्या हो रहा है ? अपनी प्रजा पर सख्ती करो, तुम्हें किस लिए रखा गया था ? यमराज पहले इन चिट्ठियों की पहुँच देता था किन्तु अब उसने पहुँच देना भी बन्द कर दिया । नरक पर देवताओं का कोई अधिकार नही रहा ।

किन्तु ईश्वर की दया से देवताओं को बहुत दिनों तक चिन्तित नहीं रहना पड़ा । आखिर एक आदमी सैकड़ों वर्ष वाद स्वर्ग लोक मे पहुँच ही गया, यह आदमी पढ़ा-लिखा था किन्तु साथ ही ईश्वर का भक्त और प्रकृति का विद्वेषी । इस आदमी को देख कर देवताओं को भी आश्चर्य हुआ ।

स्वर्गलोक में जो नवागन्तुक आया था वह पृथ्वी लोक में आडीटर (आय-व्यय निरीक्षक) था । वह अपने काम में इतना दक्ष था कि बड़े से बड़े काम को बरसो तक रुकवा देता था । किसी का वेतन रोकना, किसी को काम के

लिए पैसा न देना, उसके बायें हाथ का काम था। क्या मजाल उसके पास कोई कार्यवाही जाय और वह मीन-मेख न निकाले। घर मे तीन-तीन घंटे पूजा पाठ करता था और कार्यालय मे दस से चार की बजाय नौ से नौ बजे तक काम करता था। और घर जाते समय भी फाइलो का बण्डल अपने साथ ले जाता था। देवलोक के दूतो को यही आदमी ऐसा लगा जो स्वर्ग मे जा सकता था। क्योंकि इस व्यक्ति के कारण प्रत्येक उस कार्य मे बाधा पडती है जिस-से दुनिया का भला होता है। स्पष्ट है कि इस कार्य से देवता लोगों को प्रसन्न होना चाहिए। यदि समय पर कोई स्कूल नही खुला, अध्यापक को समय पर वेतन नही मिला, विज्ञान की प्रयोग-शाला की सहायता बन्द हो जाय, दवा-खाने की दवाइयाँ कम हो जायें तो दूसरे देवताओ का प्रभाव ही बढेगा।

इस नवागन्तुक को देखकर देवताओ के मन मे कुछ आशा बँधी। जब उन्होंने अपने काम के लिए इस आडीटर की सहायता चाही तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया। उसने कहा, मेरा जीवन आपलोगो के लिए बीता है, यदि मेरी मृत्यु भी आप लोगों के काम आय तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। आप मुझे किसी तरह नरक मे भेज दे, फिर मैं सफलता प्राप्त कर लूँगा।

देवताओं के निवेदन पर विष्णु भगवान ने अपना गरुड़ आडीटर को दे दिया। गरुड़ वाहन ने आडीटर को नरक में पहुँचा दिया। स्वर्ग-लोक से कोई महानुभाव नरक मे आया है यह सुनकर नरकवासियो मे उत्सुकता उत्पन्न हुई। नरकवासी तो यह चाहते ही थे कि किसी तरह उनका स्वर्ग से सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित हो। अब तक कोई सूत्र मिल नही रहा था। अच्छा हुआ स्वर्ग से ही एक आदमी आ गया।

नरकवासियों ने आडीटर का हृदय से स्वागत किया। फिर वे अपनी एक-एक चीज दिखाने लगे। सबसे पहले वैतरणी का पुल दिखाया गया। आडीटर ने पुल को देख कर प्रश्न किया "इस पुल का बजट कहाँ है और खर्च कितना हुआ है?" इंजीनियरों ने कोई बजट नही बनाया था और न खर्च का ब्यौरा रखा था। उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की। तब आडीटर ने कहा "आप लोगों ने यह अवैधानिक काम क्यों किया है?" इंजीनियर विधान

को जानते थे । अतः उनके मन मे पछतावा हुआ । आडीटर ने कहा—"पछ-ताने से क्या होता है ? इस प्रकार के अवैधानिक काम को समाप्त कर देना चाहिए।" आडीटर को बात मे सचाई थी । इंजीनियरों ने पुल बन्द करवा दिया।

इसके बाद नरक के सत्तर-सत्तर मंजिल के घर दिखाये गये । आडीटर का ध्यान घरो की सुन्दरता या विशालता की तरफ नही था। उसने प्रश्न किया "इन घरो के वाउचर कहाँ है ?" इंजीनियरो को अपनी गलती अनुभव हुई। कुंभीपाक नरक के प्लाट और जनरेटर दिखाये गये । आडीटर ने पूछा इस प्रकार के कामों की अनुमति किससे ली गई ? विधान के अनुसार यमराज वहाँ का सबसे बड़ा अधिकारी है । किन्तु यमराज से कोई लिखित स्वीकृति नहीं ली गई थी । आडीटर के आपत्ति करने पर मकान गिरा दिये गये। प्लाण्ट और जनरेटर बन्द हो गये ।

नरक में अन्धेरा छा गया, चहल-पहल समाप्त हो गई। देवता लोगो ने देखा नरक में एक भी दीपक नही दिखाई दे रहा है। उनकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही । उस दिन सुधर्मा सभा का घटा बजा। सारे देवता वहाँ एकत्रित हुए और रात भर अप्सराओ का नृत्य होता रहा ।

आडीटर दूसरे दिन ही लौट आया। स्वर्ग लोक में उस का जितना स्वागत हुआ इन्द्र का भी नहीं हुआ था, जिस दिन वह वृत्रासुर का संहार करके अमरावती में प्रविष्ट हुआ था।

किन्तु देवताओं की प्रसन्नता स्थायी नही रह सकी । नरक-निवासियों ने इस बार अपना बजट बनाया, हर बात नियमित रूप से शुरू की गई और देवताओ ने देखा बहुत जल्दी, किन्तु पहले से अधिक सुन्दर नरक रात्रि के विद्युत प्रकाश में जगमगा रहा है ।

—×—

आई० सी० एस० का बच्चा

"मास्टर साहब, आज पहला दिन है, हम पढेगे नही, गाना गाएँगे।" अशोक ने बडी लापरवाही से कहा। पहली मुलाकात में ही उसने मास्टर साहब पर रूआब गाँठने की कोशिश की।

पहली मुलाकात तो सब कुछ होती है साहब। बस यों समझिए पति-पत्नी की जब पहली मुलाकात होती है तो वह पूरी जिन्दगी पर असर डालती है। और आजकल टीचर और विद्यार्थी के सम्बन्ध मे भी यह बात देखी जा सकती है। लडका जब मिडिल स्कूल से हाईस्कूल मे और हाई-स्कूल से कालेज मे पहुँचता है तो इस पहली मुलाकात का महत्व क्रमशः बढ़ता जाता है। अगर अध्यापक ने पहले ही दिन कुछ करामात बता दी तो बस साल भर मजे है, लड़के भीगी बिल्ली की तरह हुक्म बजाते है। अगर पहले ही दिन मैदान से उसके पाँव उखड़ गये तो बस जमना मुश्किल है, उसी तरह जैसे किसी मेले-ठेले में बढते हुए जन-समूह के कारण एक बार अपनी जगह से हिल गये तो गये सदा के लिए। अध्यापक इस मुला-कात की तैयारी शान से करता है। और अक्सर देखा जाता है कि यह तैयारी ही हमेशा लुटिया डुबाती है। इसी तरह पहली मुलाकात के लिए सबके सब तो नही लेकिन कुछ लड़के जरूर तैयार होकर आते है। बस दाँव की बात है, जिसका चल जाए। हाँ, अध्यापक और विद्यार्थी पहले किस्मत-आजमाई जरूर कर लेते है।

अशोक को नौ वर्ष समाप्त होकर दसवा लगा था। लेकिन वह उस पीढ़ी का बच्चा नही जो मास्टर को हौवा समझकर उसके नाम से ही काँपने लगे। वह उस नई पीढ़ी का लड़का है जो मास्टर को अपना दोस्त, साथी और ज्यादा हुआ तो नौकर, एक मामूली नौकर समझता है।

"जरूर गाओ, वाह तुम कितना मधुर गाते होगे। सुनाओ तो तुम्हे कौनसा गाना पसन्द है?" चन्द्रशेखर ने मुस्कराते हुए अशोक के प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन किया।

"सुनिए", कहकर अशोक ने जोर-जोर से गाना शुरू किया ।

"चल चल चमेली के बाग मे गाना सुनाएँगे

जब लड़के ने गाने का प्रस्ताव किया था, चन्द्रशेखर को खुशी हुई थी । आदमी यों ही गलियों और सड़कों पर चाहे गुनगुनाले । लेकिन गाना है बहुत बेशकीमती और नाजुक चीज । बच्चे ही क्यों बड़े-बड़े गवैयों से भी जब गाने की फर्माइश होती है तो घोड़े की तरह मुँह बनाकर हिनहिनाने लगते है । और अशोक ने बिना फर्माइश के, या यों कहिए सिर्फ अपनी फर्माइश पर गाया था । मास्टर साहब ने मन ही मन बच्चे की हिम्मत को सराहा था, लेकिन उसने कौन-सा गाना गाया ? पहले जमाने सें लोग बालकों को चौपाई रटाते थे, भजन सिखाते थे सुभाषित याद कराते थे । मास्टर साहब ने समझा था इन्ही में से कोई चीज सुनने को मिलेगी । ज्यादा से ज्यादा किसी सिनेमा का अच्छा गाना सुना देगा । लेकिन यह, "चल चल चमेली..." वाह लड़के को न जाने किसने चुनकर गाना याद कराया है। इतने बड़े बाप के लड़के को ऐसे गीत याद कराये जाते हैं !

बहुत कुछ सभव था कि मास्टर अपने आश्चर्य और दुःख को प्रकट कर देते, लेकिन सुबह ही अशोक के बाप ने, काम शुरू करने से पहले जो लेक्चर दिया था, उसे वे भूले नही थे ।

चंद्रशेखर बी०ए०बी०टी० है । यह मत समझिए कि वे आजकल के हर माल की तरह नकली है और उनकी बी०टी०डिग्री मे कुछ खोट है । उन्होंने तीस साल पहले बी०टी० परीक्षा पास की थी । पुराने माल में कही खोट हो सकती है ? पुराने जमाने का माल घिस भले ही जाए होता है सत्रह आने का, बिल्कुल खरा । और इन तीस सालों मे लगातार वे पढ़ाते ही रहे हैं । तीस साल के अनुभव ने उनके ज्ञान को इतना खराया है कि वह हीरे की तरह चमकने लगा है। गतः छः सात साल से वे नगर के एक बड़े हाई-स्कूल की हेड मास्टरी कर रहे हैं । हजारों लड़के उनके पास पढ़-पढ़कर बड़े बड़े पदों तक पहुँच गये हैं । नगर के किसी रास्ते से गुजर तो जायँ, सड़क हो या सँकड़ी गली बच्चे-जवान सैकड़ो की तादाद मे आदर से सिर झुका

देते हैं। "नमस्कार मास्टर साहब, नमस्कार गुरू जी" के सिवाय दूसरी आवाज सुनाई नही देती। नमस्कार की मूसलाधार वर्षा होती है और मास्टर साहब भी इस नमस्कार का इतना आदर करते हैं कि क्या मजाल जो एक बूँद भी मिट्टी में मिल जाय। पचपन साल के होने से बाद भी वे नमस्कार बटोरने मे जितनी फुर्ती दिखाते है वैसी फुर्ती क्रिकेट के प्रतिपक्ष के खिलाडी ही दिखा सकते है. जो इस ताक मे ही रहते है कि कब गोला आये और कब कैच करे।

मास्टर साहब ने इन नमस्कारों को ग्रहण करने के कई तरीके निकाल रखे है। एकबार होठो पर मुस्कान लाते है दूसरी बार सिर्फ आँखों से इशारा कर देते है कि तुम्हारा नमस्कार मिल गया, किसी को दाहिना हाथ उठाकर नमस्कार की रसीद देते है तो कोई उनकी झुकी हुई गर्दन से समझ लेता है कि उसकी नमस्कार गुरूदेव तक पहुँच गई। मास्टर साहब ने पढ़ाई के सिवाय शिक्षा-विज्ञान और बाल-मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन किया है। शिक्षा के क्षेत्र में जितनी प्रणालियाँ है माण्टेसरी प्रणाली, किंडरगार्टन प्रणाली, सभी से वे परिचित है। लेकिन आज जब अशोक के पिता ने लम्बा-सा लेक्चर दिया तो उन्हे प्रतीत हुआ जैसे वे एक नया सिद्धान्त सुन रहे हैं।

यदि उस लेक्चर का सारॉश यहॉ दे दिया जाए तो हमारे पाठक भी उससे लाभ उठा सकेंगे। अशोक के पिता ने शुरू शुरू मे अपने देश की आबोहवा और यहॉ की पढ़ाई और यहाँ के अध्यापकों को जी भर के कोसा और विलायत की पढ़ाई, वहाँ के स्कूल और अध्यापकों की सेवा में लम्बा-चौड़ा स्तोत्र पढकर कहा:

"मास्टर साहब, पहले यह जान लेना चाहिए, हम बच्चे को क्या बनाना चाहते हैं? मै आई० सी० एस० हूँ। मेरा बच्चा कम से कम आई० सी० एस० तो बनना ही चाहिए।"

मास्टर साहब के मन मे प्रश्न उठा, पूछ लूँ, और तुम इसे ज्यादा से ज्यादा क्या बनाना चाहते हो? लेकिन चुप्पी साध गये। उनके मन म आया, कह दूँ, साहब आप चाहे कोशिश भी न करे, तब भी आपका लड़का आई० सी० एस० होकर रहेगा, आई० सी० एस० का बेटा आई० सी० एस०

न होगा तो क्या किसी मिडिल स्कूल के मास्टर का लड़का आई० सी० एस्० बनेगा? लेकिन इस बात को भी वे पी गये।

अशोक के पिता कहते गये, "इसके लिए यह जरूरी है कि उसे आज ही से आई० सी० एस्० मान लिया जाय। आप जैसा बर्ताव मुझसे करते हैं, वैसा ही उससे करें। कहीं मास्टरी मत जताने लगिए।" इतना कहकर वे खिलखिला कर हँस पडे। सोच रहे थे उन्होंने कितनी बड़ी बात कितने सरल ढंग से कह दी है।

मास्टर साहब इस हँसी से काँप गये लेकिन वे ध्यान लगाकर आगे की बाते सुनते रहे:—

"लड़का जब जो चाहे करने दीजिए। उसकी किसी इच्छा में आप बाधा मत डालिए। अगर बच्चे की इच्छा पूरी नही होती है तो वह कुढ़ता है और उसकी बुद्धि तेज नही होती।"

मास्टर साहब के मन में आया कह दूँ, हाँ इच्छा को दबाने से आई० सी० एस्० का पौधा मुरझा जाएगा।

आई० सी० एस्० कहता गया, "उसे कभी डराइए-धमकाइए मत। आप यह मत समझिए कि आप उसे पढ़ा रहे हैं, बल्कि आप ऐसा समझें कि अशोक पहले से सब कुछ जानता है। आप उसके पास पढ़ने आते है।"

"जी।" इस बार चन्द्रशेखर ने आँख फाड़कर वक्ता को देखा।

"आप देखते क्या है, सच कह रहा हूँ। हमारे हिन्दुस्तानी अध्यापक बिल-कुल बेवकूफ होते हैं। लड़का अगर यह समझ ले कि उसे कुछ भी नहीं आता तो वह अपना आत्म-विश्वास खो देता है और मास्टर को देवता मानने लगता है। मै इस बात से नफरत करता हूँ। बस सौ बात की एक बात यह कि आप उसे इस तरह पढ़ाएँगे जैसे वह आपको पढ़ा रहा है। वह जब जो कहे उसकी बात मान लीजिए। हाँ एक बात का खयाल रखिए। समय की पाबन्दी होनी चाहिए। पाँच से छः। हिन्दुस्तानी इस मामले में निहायत रद्दी साबित होते है। कुछ भी हो, आप पाँच बजे आयेंगे और छः बजते ही उठ खड़े होंगे, एक मिनिट इधर-उधर नही।"

इस लेक्चर के बाद एक बार तो चन्द्रशेखर के मन मे आया कि नौकरी को पहले दिन ही नमस्कार कर ले, लेकिन फिर मन में विचार हुआ बाप की थ्योरी को बेटे पर ही आजमाने मे जो अनुभव हो सकता है, वह दूसरी जगह कहाँ सभव है। थ्योरी और प्रेक्टिकल का यह सयोग कहाँ मिलेगा ? इसी विचार ने उन्हे इस काम से बाँध दिया।

थ्योरी की सब बातें ठीक थीं, लेकिन एक बात बहुत मुश्किल थी। पाँच दस मिनिट में ही अशोक कह देता "बस आज का पढना खत्म। अब आप कल आइए।"

इस अवस्था में मास्टर साहब अपना कर्तव्य स्थिर नही कर सकते थे। अगर अशोक से कहते कि नही, अभी हम बैठेगे तो सारी थ्योरी पर पानी फिर जाता। और अगर पाँच बजकर उनसठ मिनिट पर भी कुर्सी छोड़ देते तो आज्ञा का उल्लंघन होता। मास्टर साहब अपना समय पूरा करने के लिए तरह-तरह की बाते सीख कर आते थे, लेकिन साठ मिनिट भी तो कोई चीज है। इन मिनिटो का भी अजीब हाल है। जब आपको इनसे काम हो, आप सोचे घडी जरा धीरे-धीरे चले तो ये कम्बख्त हवा हो जाती है और जब आप इनसे कहें कि जल्दी-जल्दी पीछा छोड़िए तो मिनिट की बात दूर रही सेकंड भी पहाड़ बन जाता है। खैर, किसी तरह दस-पाँच दिन में गाड़ी पटरी पर आ लगी।

अब मास्टर साहब को अशोक के यहाँ आने में काफी दिलचस्पी पैदा हो गई थी। वे देख सकते थे एक आई० सी०-एस्० को बचपन में कैसे ढालते हैं। वह कौन-सा साँचा है जिससे ढलकर आदमी इतने बड़े पद पर पहुँच सकता है।

यह दिलचस्पी कभी-कभी खत्म भी हो जाती थी और उस दिन मास्टर साहब निश्चय कर लेते थे कि कल पढ़ाने नही जाऊँगा, लेकिन सुबह होते-होते उनका यह संकल्प टूट जाता था। वे शाम को निश्चित समय पर आई० सी० एस० के बंगले मे प्रवेश करते दिखाई देते थे। उन्हे पढ़ाते हुए अभी दस-बारह दिन ही हुए थे कि एक दिन उनका मन ग्लानि से भर गया।

उस दिन अशोक ने कहा, "आज हम फोटो खींचेंगे। आप देखिए फोटो किस तरह खींची जाती है।"

और वह पेन्सिल से कापी पर लाइनें खीचने लगा। थोड़ी देर में कापी पर एक चौपाया-सा बन गया।

अशोक ने प्रश्न किया, "आप पहचानते हैं यह कौन है ?"

"मैं तो नहीं पहचान सका।" मास्टर ने जैसे अशोक को बढ़ावा देने के लिए कहा।

"यह गधा है, मास्टर साहब।"

"अच्छा गधा है ?" मास्टर ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, गधा ही है," और फिर दूसरे क्षण खिलखिलाकर हँसते हुए बोला नही मास्टर साहब आप है।"

रात भर मास्टर साहब उधेडबुन में लगे रहे। ट्यूशन छोडना उनके लिए बड़ी बात नहीं थी, लेकिन वे दूसरी बात ही सोच रहे थे। हमारा देश, स्वतंत्र देश, उसके बड़े-बड़े अधिकारी और उनके बच्चे। और जब सुबह उठे तो उनके मुँह पर कोई ग्लानि नहीं थी। अशोक घर का एक मात्र बच्चा था। दादी, माँ और पिता। उस घर के ये तीन ही और प्राणी थे। पाँचवी थी आया, जो अशोक का पालन पिछले नौ साल से कर रही थी। आया को हिन्दुस्तानी कहा जाय या विलायती ? कोई एक बताना मुश्किल है। न उसे गंगा जमुनी कहना ज्यादा ठीक रहेगा। आया अशोक के साथ छाया की तरह रहती है, घर मे भी और कान्वेंट मे भी। अशोक की माँ को सभा-सोसाइटियों और क्लब से ही फुर्सत नही। अशोक जब पाँच-छः दिन का था तभी आया को दे दिया गया था और असल मे वही उसकी माँ थी। अशोक की माँ हिन्दी बोलती थी, सिर्फ-हिन्दी ही जानती थी, ओर आया की मातृभाषा भी शायद हिन्दी ही थी, लेकिन वह हमेशा अँग्रेजी में ही बात करती थी, चाहे वह शुद्ध हो या नही, उसका उच्चारण भी ठीक हो या नही। अशोक भी अपने पिता से और आया से हमेशा अँग्रेजी मे बात करता था। हाँ उसे दादी और माँ से हिन्दी में बात करनी पड़ती थी। इसमे उसे दिक्कत भी काफी होती थी। और शायद

इस दिक्कत से बचने के लिए ही वह महीनो दादी और माँ से बात नही करता था। आया के रहते उसे कमी किस बात की थी और जब माँ क्लब या किसी उत्सव से लौटकर आती थी तब तक अशोक सो जाता था।

जब अशोक नौकरो को मारने लगता या हद से ज्यादा शरारत करता था तो आया को ही बुलाया जाता था। आया भी अशोक से कम परेशान नहीं रहती थी, लेकिन उसने परेशानी से बचने के लिए काफी साधन ढूँढ रखे थे। उदाहरण के लिए जब अशोक आया के अधकटे बालो को खींचने लगता तो वह उसके हाथ में डडा दे देती और कहती उस माली को जाकर जोर-जोर से पीटो, देखो, कितना मजा आता है। और मजा लूटने की यह आसान तरकीब अशोक की समझ मे जल्दी ही समा जाती थी। अशोक जब बातें करके तंग करता या सवालों की झडी लगा देता तो आया उसे कहती, देखो अशोक, यह गाना कितना अच्छा है और "चल चल चमेली..." जैसे गाने सिखाती। जब अशोक किसी अच्छे चित्र को देखकर आया से कहता कि तुम भी वह चित्र खीचो तो वह गधा, मोटा आदमी, दीवाना और न जाने क्या-क्या बनाकर अशोक को हँसाती थी। मतलब यह कि आया अपनी शक्ति भर अशोक को सन्तुष्ट रखने की कोशिश करती थी। और यह तरकीब न अशोक की माँ में थी, न दादी में और न पिता में। और अशोक को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसे पढ़ाने के लिए जो मास्टर आता है, वह भी इन गुणों से खाली है। बेकार उन्हे बुलाया जाता है।

जिस दिन मास्टर साहब भी अशोक से बहुब ज्यादा परेशान होते हैं; आया की ही शरण लेते हैं।

चन्द्रशेखर सिर्फ अशोक की पढ़ाई पर ही ध्यान नही रखते थे, दूसरी बातों पर भी गौर करते थे। उन्हें यह बहुत बुरा लगता था कि वह अकेला रहे। अशोक कानवेण्ट से लौटता तो घर पर उसे किसी लड़के या लड़की का साथ नहीं मिलता। छुट्टी के दिनों में वह बच्चों से बिलकुल कट जाता था। इसे चन्द्रशेखर बहुत बुरा मानते थे। लेकिन वे अपनी इस बात को किसके आगे रखें? पिता जी ने पहले दिन जो लेक्चर दिया था उसके बाद कभी एक

शब्द नहीं कहा। कभी आते-आते मिल जाते थे। चन्द्रशेखर ने एक-दो बार उन्हे हाथ जोड़कर नमस्ते भी की थी, किन्तु उन्होने नमस्ते करने की सौजन्यता भी नही दिखायी। सिर झुकाये, या अगल-बगल देखते हुए निकल जाते थे। हाँ कभी-कभी अशोक की माँ जरूर अपने बेटे के हाल-चाल पूछ लेती।

अन्त में मास्टर साहब ने अशोक से ही सवाल किया। "अशोक जी, तुम्हारी दोस्ती किसी से नही है ? हमने किसी दोस्त को कभी आपके साथ नही देखा ?"

मास्टर साहब ने अशोक की जैसे किसी दुखती रग को पकड़ लिया। वह क्षण भर उदास रहा, और फिर बोला, "यहाँ कोई दोस्त ही नहीं, मास्टर साहब

"कोई दोस्त नही ?" मास्टर साहब ने आश्चर्य प्रकट किया। अशोक के बंगले से थोड़ी दूर एक बंगला और था, जिममे एक दूसरे आई० सी० एस्० अफसर रहते थे। वह अफसर भी अशोक के पिता के साथ ही इस नगर मे आया था, अन्तर इतना था कि अशोक के पिता शायद चीफ़ सेक्रेट्री थे और वह अफसर किसी विभाग का सेक्रेट्री था। अफसर का एक लड़का था दिलीप। दिलीप भी कान्वेण्ट में पढ़ने जाता था। मास्टर साहब दिलीप को जानते थे। इसी लिए उन्होंने कहा, "क्यों दिलीप तो आपके पास ही है। साथ पढ़ने जाता है। उसे दोस्त क्यो नही बनाते ?"

अशोक ने पहले से भी ज्यादा उदास होकर कहा, "उससे मैंने दोस्ता की थी मास्टर साहब। वह हमारे घर भी आता था। एक दिन मै उसके घर गया बस उस दिन..."

"उसी दिन क्या दिलीप की माँ या उसके बाप ने तुम्हें कुछ भला-बुरा कह दिया ?"

"नहीं मास्टर साहब, मेरे डेड्डी ने ही मुझसे कहा, उनके घर नही जाना चाहिए। डेड्डी ने कहा दिलीप के बाप उनसे छोटे है, और छोटों के घर बड़ो को नही जाना चाहिए। इससे इज्जत चली जाती है। हमारे डेड्डी बड़े हैं। दिलीप के बाप छोटे हैं, इसलिए दिलीप भी छोटे हैं। छोटे आदमी से दोस्ती नही करनी चहिए।"

अब तक अशोक की उदासी हट चुकी थी और जैसे वह अपनी और अपने डेड्डी के बड़प्पन को पूरी तरह अनुभव कर रहा था इसी लिए उसकी आँखें आत्मविश्वास से चमकने लगी।

इस उत्तर का चन्द्रशेखर पर क्या असर पड़ा इसका पता नही चल सका। समय पूरा हो चुका था और वे अपने घर को चल दिये थे। रास्ते मे उनके पाँव धीरे- धीरे पड़ रहे थे। बहुत ही धीरे-धीरे। और रात भर उन्हे नीद भी नही आई थी। उनके दिमाग में बस एक सवाल घूम रहा था। देश के भावी शासक किस तरह तैयार किये जा रहे हैं। उन्हे बचपन से ही किस बात की शिक्षा दी जाती है और बस वे आगे सोच नही सकते थे। सिर चकराने लगता था।

दूसरे दिन मास्टर साहब ने कुछ पढाने की कोशिश की तो अशोक ने बात करने की रुचि दिखाई। हाँ आज अशोक का रुख बिलकुल बदला हुआ था। वह बात-बात मे अकड़ने के बजाय नम्रता दिखा रहा था। मास्टर साहब ने कल की अधूरी बात चलाई। पूछा, "अच्छा दिलीप के साथ दोस्ती न सही, किसी दूसरे से दोस्ती कर लो।"

"किस से दोस्ती करना मास्टर साहब? सभी लोग तो डेड्डी से छोटे है।"

चन्द्रशेखर ने सोचना शुरू किया। अशोक के बगले से दाहिनी तरफ एक बड़ा बंगला है। वहाँ पहले कोई बड़ा सेठ रहता था। जब इस राज्य में मिनिस्टरी बनी तो मिनिस्टरों के लिए अच्छे-अच्छे बंगले तलाश किये गये। अच्छी-अच्छी मोटरो का प्रबन्ध किया गया। अशोक के बाप के बंगले के बाजू का बगला एक मिनिस्टर को मिला। मिनिस्टर को चद्रशेखर अच्छी तरह जानते थे। मिनिस्टर के चार बच्चे और दो बच्चियाँ थी। चार मे से दो बच्चे चन्द्रशेखर के हाई स्कूल मे पढ़ते रहे है। मिनिस्टर बनने के बाद उन बच्चों को इस हाई स्कूल से निकाल कर किसी मिशन हाई स्कूल मे दाखिल कराया गया है। चन्द्रशेखर को मालूम था कि मिनिस्टर का लड़का शशिकान्त बिल्कुल अशोक के बराबर है। इसलिए उन्होंने शशिकान्त की चर्चा चलाने के लिए कहा—

"आप के दाहिने हाथ वाले बंगले में कौन रहता है?"

"कोई मिनिस्टर रहता है मास्टर साहब।" अशोक ने जवाब दिया।

"आप जानते है, वह मिनिस्टर आपके पिता जी से बडा है या छोटा।" मास्टर ने प्रश्न किया।

"हमारे डेड्डी से वे बड़े हैं, मास्टर साहब।" और कुछ रुक कर बोला, "देखिए, उनके घर पर तिरंगा झंडा है, हमारे घर पर झंडा नही है। डेड्डी कहते थे जिसके घर पर झंडा होता है, वह बड़ा होता है।"

"डेड्डी और क्या कहते थे?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"डेड्डी कहते थे, बगल के बंगले वाले आदमी उनसे बड़े है लेकिन अक्ल नही है उनमे, अक्ल मे हमारे डेड्डी ही बड़े है। वे हर बात डेड्डी से पूछकर करते है।"

"आप जानते है, मिनिस्टर साहब के एक लडका है, बिल्कुल आपकी उम्र का। उसका क्या नाम शशिकान्त है न? उससे दोस्ती क्यों नहीं करते?"

"कौन वह शशिकान्त?" अशोक इस प्रश्न के साथ खिलखिलाकर हँस दिया। वह कुछ देर तक हँसता ही रहा। पेट मे बल पड़ गये, हँसते-हँसते। अन्त मे हँसी रोककर बोला—"वह भी हमारे स्कूल में आने लगा है मास्टर साहब। झंडेवाली मोटर में बैठकर आता है, लेकिन बस बौड़म है बौडम। सब लड़के इतना बनाते है उसे, बस पूछो मत।"

"लड़कों को बनाने दो अशोक। उसका डेड्डी तुम्हारे डेड्डी से बड़ा है, क्या तुम उससे दोस्ती नही कर सकते हो?"

"शशि से मैं दोस्ती करूँगा, छि:।" अशोक ने घृणा प्रकट करते हुए कहा। "उसका सिर तो देखिए। घोटम घोट। सिर पर बाल नहीं रखाता मास्टर साहब। बिल्कुल चिकनी हँडी, चिकनी हँडी, चाय गरम..."

इस बार अशोक की हँसी बहुत देर तक नहीं रुकी, मास्टर साहब भी अपनी हँसी नहीं रोक सके।

कुछ संभलकर उन्होंने कहा, "कभी उसके घर भी जाया करो, अशोक।"

"नहीं मास्टर साहब, उनका घर बहुत गंदा है। शशि के डेड्डी धोती पहनते हैं। उनकी मम्मी साड़ी बाँधती हैं। आप बोलिए क्या बड़े आदमी साड़ी-धोती पहनते हैं ? बिल्कुल गंदे लोग हैं मास्टर साहब ?"

अशोक के चेहरे पर घृणा के भाव स्पष्ट झलक रहे थे।

मास्टर साहब का मन न जाने किस उधेड़-बुन में लग गया था। अशोक उनकी यह हालत देखकर भागकर फरार हो गया। मास्टर साहब ने उसे रोका नहीं। वे स्वयं भी नही रुके। आज वे समय से पहले ही चले गये।

संयोग

दासप्पा ने अपने मूँगफली के रुपये अंटी में लगाये और गंज की घड़ी पर दृष्टि डाली। केवल पाँच बजे थे, और उसे आठ कोस चलना था। आठ कोस याने पक्की सड़क पर आठ मील और फिर सड़क से हटकर कच्चे रास्ते पर भी लगभग उतनी ही दूर। कच्चा रास्ता झाड़ियों में से होकर जाता है, जमीन बहुत ऊँची-नीची है, हो सकता है वह रास्ता आठ मील से कुछ अधिक हो, हो सकता है कम हो। कभी किसी ने नापा नही है। बस बरसो से सुनते आये हैं, इसी लिए दासप्पा भी मानता आया है कि गंज से दासप्पा का गाँव आठ कोस है। अभी पाँच बजे थे और "देवनी" के बैलों की जोड़ी, रास हिलाते ही हवा से बात कर सकती थी। दासप्पा के साथियों ने रोका, रात यहीं आराम कर भोर होते ही उठ चलेंगे। दासप्पा ने एक बार सोचा रात को घर पहुँचे तो नींद भी ठीक तरह से आएगी। और कल का दिन, पूरे बारह घंटे का दिन काम के लिए मिलेगा। उसने एक बार आकाश की तरफ देखा। आसमान में कुछ ललाई फैल रही थी, सूरज फीका पड़ चुका था। दूसरे ही क्षण उसकी नजर बैलों पर गई, जो गाड़ी के जुए से बँधे थे। दिन भर चरने और उसके बाद जुगाली करके निश्चिन्त खड़े थे। मालिक की नजर पड़ते ही दोनों बैलों ने पूँछ हिलाते हुए गर्दन हिलाई। गर्दन हिलते ही छोटी-छोटी घंटियाँ बज उठी। सारे शरीर मे सिहरन-सी उठी, और इस सिहरन ने दासप्पा की सारी दुविधा समाप्त कर दी।

दासप्पा उछला, उसने झटपट बैलों को गाड़ी से जोड़ा और चल दिया। मिनट भर में वह गंज के गलिहार को पार करके बड़ी सड़क पर आ लगा। बैलों को पता था अब घर के लिए चल रहे हैं। घर, जहाँ उन्ह सानी में सनी हुई कुट्टी मिलेगी, दाना मिलेगा और घर वाली उसे प्यार के साथ पानी पिलाएगी, पुचकारेगी और ज्वार की रोटियाँ गुड़ के साथ खिलाई जाएँगी। जानवर के लिए भी घर की, अपने ठान की कितनी ममता है। इस ममता ने बैलों के पाँव में बिजली भर दी थी। गाड़ी इतनी तेजी से चल रही थी

कि उससे उडने वाली धूल भी उसे नही छू रही थी। गाड़ी तेजी से चली जा रही थी अपने पीछे धूल का गहरा, काला-सा धुव छोड़ती हुई।

बैलो को यह भी मालूम था कि सुबह गाडी मे माल लदा था और वह बहुत बोझल थी लेकिन अब हल्की है। बैलो को इस समय गाडी चाहे हल्की मालूम हो रही हो, लेकिन दासप्पा अपने आपको बोझ से लदा पा रहा था, इस समय उसकी अंटी भरी हुई है और गाडी रीत चुकी है। लेकिन गाडी के बोझ से उसे अपना बोझ ही ज्यादा लगना है। इसी लिए उछलती हुई गाडी में भी वह सन्तुलन रख रहा है और उसने बैलो को खुला छोड दिया है। बार-बार उसके हाथ अंटी पर जाते हैं और हर बार अंटी स्पर्श करते ही उसके शरीर में हजार घोड़ो की शक्तिवाली बिजली दौड़ जाती है। हर बार हजार घोड़ो की शक्ति। इस शक्ति ने उसके दिमाग को पर लगा दिये, उसके शरीर को पर लगा दिये और इन परों की सहायता से वह गाडी के साथ-साथ हवा मे तैरने लगा, आकाश से बाते करने लगा।

इस बार अंटी पर हाथ पड़ा और आँखो के सामने एक नक्शा खिच गया। चौदह सौ रुपए, याने सौ सौ रुपये, याने बीस बीस रुपये को दस जगह रखने के बाद, अगर चौदह बार गिना जाए, काफी हैं एक आदमी को मालदार बनाने के लिए। अगर मै अपने खेत मे ज्वार बोता तो क्या इतना रुपया मिलता? मूँगफली के थैले से ज्वार का थैला भारी होता है, लेकिन ज्वार से मिलने वाला रुपया कमबख्त कितना हल्का होता है। मूँगफली के हल्के-फुल्के थैले के बदले कितना बोझल रुपया मिलता है। चौदह सौ रुपये, याने एक कोठा और उस पर एक कमरा, दो मंजिले पर बना कमरा, जिसमें किवाड़ होंगे। उस कमरे में अनाज की कोठी नही होगी, उपलें नही होंगी, बैलों का न्यार नही होगा। होंगी केवल दो खाटें, खाटें क्यों निवार के पलंग और पति-पत्नी वहाँ सोयेंगे। पूनम की रात को जब चाँद निकलेगा...

दासप्पा ने जैसे यों ही रास को झटका, बैलों ने समझा मालिक उनकी तेज चाल से खुश नही है। इसीलिए उन्होंने ताकत लगाकर छलांगना शुरू किया। और इस गति से जैसे मालिक के दिमाग की चाल भी तेज हो गई।

चौदह सौ रुपये । आजकल जहाँ वे पति-पत्नी सोते हैं वहाँ बैल बँधा करेंगे । ...चौदह सौ रुपये याने दस तोले सोना, दस तोला सोना, जिससे उसकी पत्नी पाँव से लेकर सिर तक पीली हो जाएगी । उन गहनों को पहन कर वह कैसी लगेगी ? और उस समय पटवारी की, पटवारी ही क्यो पटेल की औरत भी उसके आगे पानी भरेगी । उनका कैसा पिलपिला चेहरा है । सोने का गहना पहनती है तो पीलापन और बढ़ जाता है, जैसे बरसों की बीमार हों । बस गाँव में मेरी पत्नी एक ही होगी, एक ही कि जिसे हजारों में, लाखो मे पहचाना जा सके ।

और चौदह सौ रुपये का मतलब है, दो नम्बर जमीन । आसानी से मिल जाएगी । तरी और खुश्क मिली-जुली लूँगा तो तीन नम्बर भी मिल सकती है और उस पर औरत-मर्द जमकर काम करेंगे तो अगले साल फली दूनी पैदा होगी । याने चौदह सौ की जगह अट्ठाइस सौ रुपये मिलेगे । तब उसके घर में दो की जगह चार बैल होगे । एक की जगह दो गाड़ी और और

और उसका ध्यान मार्ग के दोनों तरफ उगे हुए खेतों पर चला गया । मीलो ज्वार लहरा रही थी । काली कच्च ज्वार, नागिन की तरह फन खोले बढी चली जा रही थी और उस ज्वार से टकरा कर आने वाली हवा, उस हवा मे कितना मीठा सगीत भरा था । एक कतार मे दूर-दूर तक बाजाप्ता खड़ी हुई ज्वार कितना व्यवस्थित दृश्य अंकित कर रही थी । कही-कही कपास के पौधे जिन पर इक्के-दुक्के पीले फूल खिलने लगे थे, पीले फूल जो अपनी खूबसूरती पर इस एकान्त मे भी इठला रहे थे । ऐसी ऐंठ जो किसी राजमहल की षोड़शी भी दर्पण के समाने अनुभव न करे। किसी-किसी खेत में बालिश्त बराबर चना, अपने नन्हें-नन्हें शरीर मे नन्हें-नन्हें पत्तों को जड़े हुए धीमी हवा में थिरक रहा था । छुटभैये चने मे भी शहजादे की-सी शान है । खुश होकर उछलने लगता है और नाराज होता है तो चुपचाप खड़ा हो जाता है । छुटभैये का गुस्सा और छुटभैये की खुशी किसी से छिपी रह सकती है ?.

कर्णाटक में ये दिन भी कितने सुन्दर होते है। जगल हरियाली से ढँका है । शीत ने इस भूमि को सताने के बजाय सजाया है । शीत की ओस सिर्फ

यहाँ मोती ही नही बनती, ज्वार के पत्तो की मिठास के साथ मिलकर मिश्री बनाती है, और इस मिश्री को सूरज निकलने से पहले ही पेड़-पौधे चाटकर पनपते है। इस मिश्री को खाने के लिए पक्षी जमा हो जाते है। दासप्पा के सामने प्रभात का दृश्य अकित हो गया, जब वह बीस-पच्चीस गाड़ी वालों के साथ इसी रास्ते से गंज गया था और गाड़ियों की घंटी से पूरा रास्ता गूँज रहा था। वे गाड़ियों के पहियों की घरघराहट, बैलों के गले की घंटियों का घन-घननन एक ताल पर, सम स्वर में बज उठना कितना मनमोहक था। इस मनमोहक ताल स्वर पर पक्षी चों-चों करके ज्वार की मिश्री समटने में जुट गये थे। कितनी तरह की चिडियाँ लाल, हरी, काली और पचरगी। इन जाडों के दिनों मे, कर्णाटक में इतनी रंग-बिरंगी चिडियाँ कहाँ से आ जाती है

दासप्पा का ध्यान गया सामने, पश्चिम पर। सूरज डूब गया था। गर्मी के दिनों मे सूरज डूबने और रात होने मे कितना अन्तर होता है ? लेकिन जाडों मे, जैसे दोनों साथ-साथ आते है : हाँ साथ-साथ आते है। गर्मी में रात का आना बूढ़ों की नींद की तरह है और जाड़ों की रात बच्चों की नीद है। पलके झपीं और नीद निगोड़ी ने डेरा डाला। सूरज डूबा ही था कि अंधेरा छा गया और दस-पन्द्रह मिनिट में ही रास्ता धुँधला हो गया। अंधेरा जल्दी ही गहरा हो गया। आकाश तारों से ढँक गया और गाड़ीवान की आँखे भी जैसे अंधेरे में डूब गईं, राह सुझाई नहीं दे रही थी। रास्ते के दोनों तरफ खड़े हुए पेड़ जैसे जमकर खड़े हो गये हों और जाड़ों की रात का सन्नाटा जिसमें बड़े से बड़े सूरमा का दिल काँप जाए। फिर जाड़े की साँझ घर से बाहर रहने वाले आदमी के दिल की स्मृतियों को पंख लगा देती है, इसी लिए हृदय हलका हो जाता है और कम्पन उसे ज्यादा कँपाता है। कँपाता है और मसल-मसल देता है।

अभी तो सडक भी पार नहीं हुई। अभी साढ़े तीन मील भी नहीं आ सका था दासप्पा। आता भी कैसे ? उसे चले हुए अभी आधा घंटे से कुछ ज्यादा हुआ होगा और अभी उसे खड्डों से भी रास्ता तय करना है। गाड़ी जाने

कैसे रास्ता पार करेगी ? उसके चारों तरफ अंधेरा था। वह एक हाथ मे बैलों की रास थामे था और दूसरा हाथ अंटी पर। अगर तीसरा हाथ भी होता तो शायद उससे हृदय को थामता और इससे उसे बहुत कुछ धीरज मिलता।

दासप्पा ने रास को जोर से झोला दिया। इस बार बैलों ने रही-सही पूरी ताकत लगा दी। बैलों को इस अंधेरे में न जाने कहाँ से हिम्मत मिल गई। उनकी आँखें इस अंधेरे में भी चमक रही थी, लेकिन गाड़ी हिम्मत हार गई। उस ठंढ में, उस अंधेरे में पहियों ने चलने से इन्कार कर दिया। जाडे के मारे ठिठुरे हुए एक पहिये से लोहे का कड़ा झनन करता हुआ दूर जाकर पेड़ से टकराया और बेसुरी आवाज में जमीन पर गिर गया बेताल होकर। दासप्पा का दिमाग जैसे आसमान से धरती पर आ गया उसने देखा उसकी गाड़ी मोड़ से पाँच-सात कदम इधर ही है। पाँच-सात कदम और फिर उसके आगे तो मोड़ है, वह मोड़ जहाँ से उसके घर को रास्ता जाता है, उसके खेतों को रास्ता जाता है। जिस रास्ते पर आँखे बिछाये, जाड़े से और शर्म से और प्रतीक्षा से सिमटी हुई उसकी पत्नी खड़ी होगी ..

उसने जोर से रास खींची। इस तनाव को बैलों ने तत्काल अनुभव किया और वे खडे हो गये। दोनों बैलो के नाक से जोर-जोर से साँस निकल रही थी। यह साँस उस सन्नाटे में कैसा भय भर रही थी। बैल हाँफ रहे थे। दासप्पा काँप रहा था। अब ? अब क्या होगा ?

"कौन हो गाड़ीवान ? गाड़ी का पट्टा उतर गया है ?" सड़क के किनारे बनी हुई झोपड़ी में से राचटप्पा ने अपनी बूढ़ी आवाज में काँपते हुए अन्दर से पूछा। दासप्पा को लगा जैसे किसी पुरानी कबर में से उसे कोई सम्बोधित कर रहा है। दासप्पा राचटप्पा को बरसों से जानता है। उसने जैसे तिनके का सहारा पाया। वह कुछ हँसते हुए बोला

"शरणार्थी दादा ! मै हूँ दासप्पा, यही मावलगी का दासप्पा। मुझे पहचाना नहीं ?"

राचटप्पा बीड़ी पीते हुए बाहर निकला। सुलगी हुई बीड़ी की चमक में

उसकी सफेद मूँछे चमचमा रही थी। उम्र के कारण वह दोहरा हो चला था। खाँसता-खाँसता बोला —"अब यही टिक जाओ, बेटा। घर दूर है। जंगल का रास्ता, कही बैल का पाँव फिसल जाए तो नाहक आफत का सामना करना पड़ेगा। बिना पट्टे के पहिया भी कैसे चलेगा। यही सो जाओ। सुबह पास के गाँव से लोहार को बुलाकर.. "

"तुम ठीक कहते हो दादा। अब बैलो को इस रास्ते ले जाना ठीक नही। तुम्हारे साथ रात बिता दूँगा।"

यह कहकर दासप्पा ने बारी-बारी से दोनों बैलो की पीठ पर हाथ फेरा। इस स्पर्श में कितनी ताकत थी। बैलों की हाँफ आधी हो गई। उसने कीली निकालकर बैलो को गाड़ी से अलग किया और सड़क से हटकर एक पेड़ से बाँध दिया। खाली गाड़ी खीच कर एक कोने पर खड़ी कर दी। और खुद राचटप्पा के पीछे-पीछे झोपड़ी मे दाखिल हुआ।

राचटप्पा की झोपड़ी दासप्पा के लिए नयी नही थी। आस-पास के किसानों के लिए भी नयी नही थी। झोंपड़ी के पास बस ठहरने का खम्भा गड़ा था। आने जाने वाली बस वहाँ ठहरती थी। किसानो की गाड़ियाँ भी वहाँ रुकती थीं। पैदल चलने वाला भी कुछ ठहर कर ही इधर या उधर जाता था। बस के समय राचटप्पा की झोपड़ी मे दस-पन्द्रह गिलास चाय बनती थी। सिगरेट तो नही, हाँ बीड़ी मिल सकती थी और दियासिलाई की डिब्बी भी। दूसरे तीसरे दिन मोटे सेवों पर गुड़ की चाशनी चढ़ती थी, मूँगफली, सिकी हुई मूँगफली भी, दाल और सेव भी मिल जाता था और भने चने भी थे। इस जगल में ये चीजे काफी थीं और इन्ही चीजो की बदौलत राचटप्पा आस-पास सेठ के नाम से मशहूर था, क्योंकि वह गज की तरफ जाने वाले किसान को बीड़ी का बडल उधार देता था और दाल सेव, मीठे सेव और गुड की जलेबी भी खिला देता था। लौटते समय किसान पैसा चुका देता था। सामान के पैसे चाहे वह ज्यादा ले ले लेकिन पानी मुफ्त मे पिलाता था और बीड़ी सुलगाने के लिए कंडे की आग देने में भी उसने कभी कंजूसी नही बरती। इस उदारता के लिए सभी लोग राचटप्पा के ऋणी थे।

राजटप्पा ने इस छोटी-सी दूकान, याने झोपड़ीनुमा दूकान पर अपने पचास बसन्त बिताये हैं। एक-दो नही पचास। उसे कभी अधिक की लालसा नही हुई। जो कुछ मिल गया उसी पर सन्तोष किया। सडक के किनारे उसकी झोपड़ी थी, उसी सड़क से जैसे उसने जिन्दगी का पाठ सीखा था। जब बसन्त मे और बरसात में आस-पास की धरती हरी हो जाती है तब भी सड़क का मन इधर-उधर नही भटकता, और जब गर्मी में खेत कट जाते है, मीलों हवा के झोंको के साथ धूल उड़ती है तब भी सड़क का जी नहीं घबराता। अपनी जगह अटल रहती है सड़क, हर मौसम मे, हर हालत मे।

"तुम तो सुबह गये होगे गंज?" राचटप्पा ने अपनी टूटी खटिया पर लुढ़कते हुए कहा।

अब तक दासप्पा भी अपना एक कम्बल बिछाकर और एक कम्बल घुटनों पर डालकर बीड़ी सुलगा चुका था। भय के समय बीड़ी का अपना महत्व है। वह जैसे पक्के मित्र की तरह साथ देती है। धुएँ की एक घूँट जादू का काम करती है। और फिर भय के साथ जाड़े की वजह से शरीर में कँपकँपी भी छूट रही हो तो बीड़ी की घूँट का असर तत्काल देखा जा सकता है।

"हाँ दादा मूँगफली बेचने गया था। जल्दी ही बिक गई। सोचा घर चल-कर आराम करूँगा..."

मूँगफली बिक गई? कितने की बिकी बेटा? राचटप्पा ने यो हीं सवाल किया।

"चौदह सौ रुपये की दादा।" दासप्पा ने कहने को तो कह दिया, लेकिन वह मन ही मन पछताया। क्यो इस बूढ़े को उसने बता दिया। अगर बूढ़े के मन मे पाप आ गया तो? दूसरे ही क्षण दासप्पा ने मन में कहा, ऊँह कौन सूरमा है। अकेला क्या कर लेगा? और फिर राचटप्पा तो बहुत ईमानदार है। बहुत ही ईमानदार? वह ऐसी बात कैसे सोच सकता है। ऊँह। मै भी कैसा आदमी हूँ जो इस तरह बूढ़े आदमी पर शक करता हूँ। दिन जल्दी ही निकलेगा। जाड़े में कौन आता है यहाँ, और वह निश्चिन्तता से पाँव फैलाकर लेट गया।

"अच्छा चौदह सौ रुपये की बिकी। बड़े भागवान हो बेटा। भगवान

बरक्कत दे। आजकल धरतीमाता की अपने बेटों पर दया है दासप्पा, नहीं तो..."

"हाँ दादा, दया तो है ही, गुरु महाराज की दया है ही, नही तो मेरे बाप जमीन जोतते-जोतते मर गये, कभी सौ रुपये आँख से नहीं देखे।"

इस बात ने राचटप्पा को छू दिया। उसे भी तो बीस और दस बरस हुए इस दुकान को लगाकर लेकिन क्या दो सौ रुपये कभी देखे हैं इक्ट्ठे ? यही पन्द्रह बीस रुपयों में उसका व्यापार चलता है। और व्यापारी होते हुए भी उसके पास कभी सौ रुपये नहीं हुए। यह किसान का लड़का बैल की पूँछ मरोड़कर चौदह सौ रुपये का धनी बन गया। चौदह सौ रुपये ! कितनी बड़ी रकम है !

बूढ़ा बहुत बातून है। किसी मुसाफिर से आने पर घंटों नही छोड़ता, कितने चुटकुले याद हैं उसे, कितनी कहावतें और कितने ही घरों का इतिहास उसे मालूम है। लेकिन आज दासप्पा के बार-बार बात चलाने पर भी वह खामोश था। उसका कंठ सूखा जा रहा था, जीभ अकड़ रही थी और साँस तेज चलने लगी थी और सिर्फ मुँह से हाँ या ना कह देता था।

बूढ़े की छाती में न जाने क्या उथल-पुथल हो रही थी, वह चूल्हे पर आग में तपती हुई हंडी की तरह खदबदा रहा था। दोनों हथेलियाँ आज बरसों बाद गरम लग रही थी और बगल में अजब गुदगुदी-सी हो रही थी, आज उसे फिर अपनी कुहनी लचकदार लगी। चौदह सौ रुपये ? इतने रुपयों से वह गंज में दूकान खोल सकता है, और दूसरे व्यापारियों की तरह...

रुपया भी क्या अजीब चीज है ? उसे लेकर कोई भी आदमी अपने ढंग की कल्पना कर सकता है। बिल्कुल अपने ढंग से और रुपया निर्लेप नारायण है, सभी की कल्पना में साथ देता है। उसी रुपये को लेकर दासप्पा ने अभी एक कल्पना की थी और राचटप्पा ने उससे अलग कल्पना कर डाली और दोनों समय रुपया खामोश था। खामोश था और खामोशी रजामन्दी का, स्वीकृति का दूसरा नाम है।

दासप्पा लेट तो गया, लेकिन उसे नींद नहीं आ रही थी। अंधेरा होने से क्या होता है, अभी मुश्किल से सात ही बजे होंगे। जब उसने देखा बढ़ा

राचटप्पा बात नहीं करना चाहता तो वह अपने आपसे बात करने लगा। जब आदमी दूसरे से बात करता है तो कुछ सिलसिला रहता है, लेकिन जब अपने आपसे बात करता है तो वह सिलसिला खत्म हो जाता है। न जाने कितनी तरह की बातें दिमाग मे घूम जाती हैं।

राचटप्पा ने बातें बन्द कर दीं, लेकिन उसकी खाँसी बन्द नहीं हुई थी। वह अपने में अजीब चीज अनुभव कर रहा था। जाड़े की रात में भी वह पसीने से तरबतर हो गया था और साँस की गति तेज होती जा रही थी। अन्त में उससे रहा नहीं गया तो वह इधर-उधर टहलने लगा। फिर वह अंधेरे में ही टटोलने लगा। आखिर उसके हाथ कुट्टी काटने का गँडासा लगा और वह उस गँडासे को लेकर झोपड़ी के बाहर निकल गया। दासप्पा का ध्यम्न बूढ़े की ओर उस समय आकर्षित हुआ जब वह देहली पार कर रहा था और ठोकर खा गया था। उसने देखा बूढ़े के हाथ में गँडासा है।

राचटप्पा दो क्षण बाद ही भीतर आया। इस समय उसके हाथ मे गँड़ामा नही था, लेकिन वह बुरी तरह काँप रहा था। उसके साँस लेने की और छोड़ने की आवाज साफ सुनाई देती थी। मालूम पड़ता था उसे अब जल्दी-जल्दी साँस लेने में कठिनाई हो रही थी। राचटप्पा ने पुकारा, "दासप्पा।"

उसकी आवाज में कितना कम्पन था? उस कम्पन मे कैसा भाव छिपा था? दासप्पा के पूरे शरीर में रोंगटे खड़े हो गये। उसने कुछ जवाब नहीं दिया। जवाब न पाकर राचटप्पा बाहर चला गया।

जब दो-चार मिनिट बाद भी राचटप्पा झोंपड़ी में नहीं आया तो दासप्पा का मन ऊपर-नीचे होने लगा। कुछ क्षण पहले उसने मनुष्य के सान्निध्य मे, उसके निवास स्थान मे प्रवेश करके अभय पाया था, लेकिन अब उसे उसी भोपड़ी में, आदमी की उपस्थिति से इतना भय क्यों लग रहा है, और जैसे उसे कोई अन्दर ही अन्दर उकसा रहा था, उठ, दासप्पा, उठ। यहाँ रहना ठीक नहीं है। जल्दी से जल्दी छोड़ दे इस कोठरी को। उठा अपने कम्बल को। लेकिन बैल का क्या होगा? ऊँह सुबह देखा जाएगा। और वह दो क्षण बाद ही झोंपड़ी के बाहर आ गया। कन्धे पर कम्बल पडा

था। कम्बल होने के बाद किसान को किस बात की चिन्ता। जहाँ बिछाया वही घर बन गया।

झोपड़ी से दो सौ पग दूर एक नाला है। नाला टेढ़ा-मेढ़ा होकर दूर तक निकल गया है। पास-पास उसकी शाखाएँ भी फैली हुई है। दासप्पा मुख्य नाले में न बैठकर उसकी एक शाखा मे चला गया। मिट्टी काफी मुलायम लगी। उस पर कम्बल बिछाकर वह बैठा। मन में उसने शान्ति अनुभव की, लेकिन कुछ चिन्ता बनी हुई थी। साथ ही उसमे हिम्मत भी आ गई थी। धरती का बेटा धरती के साथ था। अब उसका हाथ आना सरल नही था।

दासप्पा को झोपड़ी से या दूकान से निकले दास-पाँच क्षण बीते होंगे कि राचटप्पा का जवान लड़का घर से रोटी लाया। आजकल सुबह किसान लोग अपना माल गज ले जाते हैं, इसलिए दिन निकलने से पहले राचटप्पा का व्यापार शुरू हो जाता है और एक तरह से दिन निकलते-निकलते बहुत कुछ व्यापार समाप्त भी हो जाता है। बेटा बाप की सहायता करता है इसलिए वह बाप के लिए घर से रोटी लाता है और यही सो जाता है। बेटे ने देखा बाप दूकान में नहीं है। उसने जगह पर रोटी रखी और खुद कम्बल डालकर सो गया। लेटते ही थोड़ी देर में उसे नीद आ गई।

राचटप्पा एक और आदमी के साथ अपनी दूकान में दाखिल हुआ। वह और उसका साथी बहुत चौकन्ने थे। जैसे वह रोम-रोम से जानने की कोशिश कर रहे हों, कही खतरा तो नही है। उन्होंने इधर-उधर आहट की, लेकिन सोनेवाले मे जागने के चिन्ह प्रकट नही हुए। राचटप्पा ने अपने साथी के कन्धे पर हाथ रखा और साथी को जैसे इशारा मिला। उसने गँडासे को उठाकर अपनी पूरी ताकत लगाकर सोनेवाले की गर्दन पर वार किया।

सोनेवाला न हिला न डुला, न पुकारा न चिल्लाया? वार जमकर पड़ा था, ठीक जगह पर पड़ा था। राचटप्पा और उसके साथी ने अनुभव किया, उनके पाँवों पास कुछ गीली-गीली चीज बही चली आ रही है। वह पानी नहीं हो सकता, पानी इतना गरम, इतना चिपचिपा कहाँ होता है?

राचटप्पा ने सोनेवाले की जेब टटोली, कमीज खून मे तर था । उसने काँपते हाथों से जल्दी-जल्दी देखा, जेब खाली था । काँपते हाथो से उसने अंटी को देखा, वहाँ भी कुछ नही था । अन्त मे निराश होते हुए राचटप्पा ने अपने साथी से कहा—"अप्पा, मालूम होता है, साले ने यो ही गप्प हाँकी थी । नाहक मारा गया ।"

साथी ने जरा गंभीरता से कहा, "अरे डरते क्यों हो? लाओ एक बीड़ी तो सुलगाओ और जरा दीपक लगाकर अच्छी तरह तलाश करो । पूरे सात सौ देने होगे । मैंने कितनी बहादुरी का है । बस एक ही वार और दो टुकड़े ।"

"हाँ, हाँ तुम्हे सात सौ ही दूँगा, लेकिन कुछ हाथ तो लगे ।" अब तक राचटप्पा के हाथ का काँपना रुक गया था । उसने तेजी से मिट्टी का दिया जलाया । साथी ने बीड़ी सुलगाई । और फिर दोनों बड़े उत्साह से लाश की तरफ बढ़े ।

अभी दोनो लाश तक पहुँचे भी नही थे कि राचटप्पा की निगाह लाश के मुँह पर गई और उसके मुँह से एक चीख निकल गई । वहाँ दासप्पा की नहीं उसी के बेटे की लाश, ठंडी लाश पडी थी । बस चीख के बाद वह कुछ क्षण तक बेहोश-सा पडा रहा । जब उसने आँखें खोलकर झोपड़ी मे इधर-उधर देखा तो साथी दिखाई नही दिया । वह न जाने कब का चला गया था । राचटप्पा को लगा जेसे रह-रहकर भूकम्प हो रहा है, रह रहकर उसकी झोंपड़ी में जोर से धमाका होता है । वैसी ही गड़हड़ाहट है, जैसी कभी उस सड़क पर टैंक के चलते समय हुई थी ।

इधर दासप्पा अपने गाँव के पास आ गया था । अभी सप्तर्षि आकाश के बीचोबीच भी नही आये थे कि वह घर पहुँच गया । द्वार बंद थे । भीतर दीपक टिमटिमा रहा था । दासप्पा ने दूर से देखा और मिलन की उमंग ने सारी थकान और भय को एक साथ ही समाप्त कर दिया । वह तेजी से घर की ओर बढ़ा ।

—X—